

**THE BOOK WAS
DRENCHED**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180581

UNIVERSAL
LIBRARY

बेटी की विदा

: लेखक :

पन्नालाल पटेल

: अनुवादक :

मगनलाल जैन

— प्राप्तिस्थान —

रवाणी एण्ड कंपनी

[बुकसेलर्स एण्ड न्यूजएजण्ट्स]

बावू गेनू रोड, बम्बई-२

પ્રકાશક

જમનાદાસ માણેકચંદ રવાણી

જીવન પ્રકાશન

બલ્લભવિદ્યાનગર

(ગુજરાત)

પ્રથમ સંસ્કરણ : જુલાઈ-૧૯૨૪

મૂલ્ય દો રૂપયે

મુદ્રક

જમનાદાસ માણેકચંદ રવાણી

અનેકાન્ત મુદ્રણાલય

બલ્લભવિદ્યાનગર

(ગુજરાત)

मेरा यह अनुवाद उनको समर्पित है
जो प्रेरणा के आदि स्रोत रहे ।

—मगनलाल जैन

दो शब्द

भारतीय ग्राम्य-प्रदेश विशेषतः उत्तर गुजरात के ग्राम्य-प्रदेश को 'बेटी कि विदा' अर्पण करने वाले सुप्रसिद्ध लेखक श्री पन्नालाल पटेल ने इस उपन्यास में जो कुछ लिखा है वह महान मनुष्यों की नहीं लेकिन मानवतायुक्त अविकृत मानवों की कहानी है। उपन्यास लेखक भी उसी वर्ग में पैदा हुआ, वहीं की मिट्टी में लोट-पोट व खेल-कूदकर बड़ा हुआ है इसलिये इस वर्ग की अच्छाई और बुराइयों को सहज स्वाभाविक रीति से पकड़ सकनेवाला अविकृत मानव है।

'बेटी की विदा' में कहानी का प्रारंभ एक गरीब गाँव में कड़-कड़ाती ठंड की रात्रि के करीब आठेक बजे से हो रहा है। जिससे वाचन में तादृशता विशेष रूप से झलक उठती है। 'बरतनों के धोने की खरर खरर आवाज़, माता की गोद के बदले बच्चों के उसकी साड़ी में लिपट कर सो जाने और किसी किसी घर में चूल्हे आदि के पास बैठकर लोग ताप रहे हैं' आदि के वातावरण से ऐसा लगता है कि लेखक लिखने की अपेक्षा मुँह से कहानी कह रहा हो।

रूपहरी पदों पर चित्रपट ही देख रहे हों इसतरह बतलाई गई इस ठंड की रात में कहानी का नायक प्रवेश करता है—गांव में

सबसे देरी में ब्यालू करनेवाले मनोर मुखिया भी खा चुके हैं। दरवाजे की ओर बढ़ते बढ़ते हाथ पर हाथ फेरकर उन्हें सुखाते हुए घरवाली से पूछा : 'कहाँ गया कलुआ ? मेरा हुक्का तैयार...!'

'तैयार हुक्के में तुमसे आग भी नहीं रखी जाती ?' इसप्रकार घरवाली के ताने सुनकर चुपचाप आग रखनेवाला यह किसान—मुखिया मनोरदा घर में हीन, अवगणनीय-सा ज्ञात होता है। लेकिन उसी समय एक युवक जल्दी जल्दी आकर कह जाता है कि 'मनोर काका तुम्हारा काम है, खड़े खड़े घर आ जाओ। मेरी माँ न जाने कहाँ से खबर लाई है। माँ ने कहा है कि यदि सो रहे हों तो जगा लाना' आदि कुछ शब्दों ने मनोर मुखिया का ग्राम्य-व्यवहार में कोई महत्वपूर्ण व्यक्तित्व झलका दिया है।

दूसरी ओर 'कुछ काम है। खबर नहीं, मेरी माँ कहीं से खबर लाई है आदि।' ये शब्द कहानी और वटना-प्रसंग को आकर्षक बनाने के लिये आश्चर्यजन्य उत्सुकता को पूर्णतया सजग कर रहे हैं।

जहाँ से मनोरदा को बुलावा आया था वहाँ न जाकर वह बेचर बढ़ई के घर क्यों जा पहुँचता है ? इसका खुलासा करने के पहले ही बात का रहस्य मालूम पड़ जाता है। मनोरदा को 'माँ कहीं से खबर लाई है' इन शब्दों से ज्ञात होता है कि गांव के बढ़ई बेचरा की बहिन भूमकू ससुराल के जुल्मों से तंग आकर भाग आई और पीहर में गांव के पटवारी के प्रेम में पड़कर भाई का भी घर छोड़ गई थी। शायद उसी की बात होना चाहिये।

बेचर के घर में और चलते-चलते कहे जानेवाले मनोरदा के शब्दों से एक चित्र उपस्थित हो जाता है जो उसकी चतुराई स्वार्थ-परता, प्रपंच और क्रूरता का है। यहाँ तक का मनोर मुखिया का चरित्र-चित्रण निस्पन्द और मूक-सा बना देता है। कहीं इस आदमी के शब्दों में अनुकंपा और क्रूरता गूँजती है और कहीं धूर्तता का जाल बुनता और अपने स्वार्थ की कोई बाज़ी जमाता सा मालूम पड़ता है। परन्तु साथ ही प्रेयसी अम्बा को अतीत की लक्ष्मण

स्मृतियों में उलझाकर और ऊँचनीच समझाकर मोती के साथ भूमकू के नातरे की तैयारी तथा पंचायत में कूटनीतिक हथकड़ों को देखने से अच्छे अच्छे राजनीतिज्ञों को भी दाँतों उँगुली दबाना पड़े तो आश्चर्य नहीं।

यद्यपि भूमकू विकने के लिये अहमदाबाद पहुँची, लेकिन वापिस घर लौटने के लिये अविकल अश्रुपात करते देखकर मनोरंदा को यह भावना पैदा हो जाती है कि 'जब तक साथ है तबतक तो मेरी बेटी सरीखी है।' और इसी भावना-वश क्रोध से कटु-शब्द कहते हुए भी वापिस गांव लौटा लाता है। इस चित्रण से ज्ञात होता है कि क्रूर से क्रूर हृदय के किसी कोने में मानवता साँई रहती है जो कारण मिलते ही अवश्य जाग्रत हो सकती है।

पात्र-विधान की कला, वस्तु-विधान की युक्ति, प्रत्येक पात्र और प्रसंग को अपने अपने स्थान पर निश्चित करनेवाली यह रहस्य-विद्या दो बातों के लिये आभारी है। एक तो लेखक, स्वयं जिस समाज—गांव के पुनर्विवाह करणवाले वर्गों से बने समाज—का चित्र उपस्थित कर रहा है, उसके मर्म को अच्छी तरह जानता है। इस समाज के भले बुरे मनाव्यापारों की चाबी उसके हाथ में है। इन ग्रामवासियों की राग, द्वेष, तिरस्कार आदि की उर्मियाँ चाहे जितनी खराब होने पर भी ठिकाने आ जाएँ इतनी सरल होती हैं। दुरावेशों के रहने के गुप्तस्थान और उनके खोलने की चाबियाँ श्री पन्नालाल पटेल ही जानते हैं।

दूसरा कारण यह है कि कथा-वस्तु को स्वच्छन्द न बनाकर एक ही बात पर सारी कहानी को गूँथ दिया है। भूमकू के प्रश्न के सिवा दूसरी कोई बात बीच में नहीं ली है। समस्त ग्राम्य-समूह का मानस इस एक ही प्रश्न पर चक्राकार गूँथ दिया है, और इसी से वार्ता का प्रवाह पाँच सात दिनों और थोड़े से कुटुम्बों के बीच होकर बह जाता है। वर्तमान में जहाँ अनेक प्रश्नों की अस्वाभाविक मिलावट कर मुख्य विषय का गला घाँट देने की वृत्ति जोर पकड़ रही है और इसीलिये कहानी उपन्यासों के ढेर जन्म

लेते ही मर जाते हैं वहाँ 'बेटी की विदा' अधिक जियेगा। क्योंकि इसने अपने विषय के चतुर्ल से बाहर पैर नहीं रखा है।

'बेटी की विदा' में नायक के समस्त प्रतिनायक नहीं हैं। कोई शत्रु-मित्र नहीं, मात्र समूहगत जनता के सदावेश और दुरावेश हैं। है मात्र आवृत सरल, सुन्दर, व्यवहार-बुद्धि; और हैं वातवरण के अंधरे। यह उपन्यास कहानी के रूप में ही नहीं परन्तु ग्राम्य-जीवन के यथार्थ चित्र के रूप में स्वीकृत होगा।

लेखक की तरह अनुवादक श्री मगनलाल जैन ग्राम्य-स्थली में बड़े हुए हैं, वहाँ के निवासियों की हार्दिक भाषा के मर्मज्ञ हैं। इसीलिये वे लेखक के हाथ को आविकृत रूप से उपस्थित कर सके हैं।

१२-६-४४ }

—देवकुमार जैन

जाड़े के दिन हैं। रात के करीब आठ बजे होंगे। ठंड इतनी अधिक है कि सब अपने अपने घरों में—कोई चौपाल में सुलगते हुए अलाव के पास तो कोई चूल्हे के आगे बैठकर ताप रहे हैं। खेतों के रखवाले भी ब्यालू करके खेतों पर चले गये हैं। गांव की स्त्रियों के गृहकार्य पूरे नहीं हुए हैं। किसी किसी मकान में से हँडियाँ धोने की खरखर आवाज आ रही है। दिनभर के थके-माँदे बालक माता की गोद के बदले उसकी साड़ी में लिपटकर गुद-दियों के नीचे छिपकर सो गये हैं।

गांवभर में देर से ब्यालू करनेवाले मनोरदा मुखिया भी ब्यालू करके उठे हैं। हाथ पर हाथ फेरकर उन्हें सुखाते हुए वे दरवाज़े की ओर मुड़े। घर में काम करती हुई घरवाली से पूछा : 'कहाँ गया कलुआ ? मेरा हुका तैयार...'

'यहाँ कहाँ है कलुआ ? वह तो ब्यालू करके खेत पर चला गया, लेकिन कहता था : हुक्के में पानी डाल दिया है और चिलम में तमाखू भी भर रखी है। तुम ज़रा से अंगारे भी नहीं रख सकते ?'

लेकिन मनोरदा—अन्न और धुएँ में अन्तर न पड़े इसलिये, या फिर घरवाली की रोज़ की एक ही मतलब की बात सुनने की इच्छा न हो—चाहे जो हो लेकिन घरवाली का वाक्य पूरा होने से पहले ही चौपाल में सुलगते हुए अलाव से हुक्के में अंगारे भरने लगे थे। खटिया में लेटकर हुक्के की नली मुँह में लगाने ही वाले थे कि दीवार बनाकर आधी बन्द की हुई चौपाल में किसी की आकृति देखकर पूछा :

‘कौन है रे ?’

‘यह तो मैं हूँ मुतियाँ, मनोर काका ! तुम्हारा एक काम पड़ा है, जरा घर तक आ जाओ तो अच्छी बात है !’

‘ऐसी ठंड में ? अरे ऐसा क्या काम है ?’ कहकर हुक्का गुड़-गुड़ाते हुए मनोरदा ने अलाव के पास खड़े हुए मोती की ओर देखा ।

‘काम है इसीलिये तो काका, जरा कम्बल लपेटकर आ जाओ !’ और मनोरदा को चुप देखकर आगे बोला : ‘टिम्बावाले मूलाभाई को बुलाकर अभीहाल आता हूँ !’

‘लेकिन काम का कुछ नाम भी है या नहीं ?’

ऐसा मालूम होता था जैसे मोती किसी उतावल में हो । उसने मनोरदा के आगे झुककर धीरे से कहा : ‘तुम ज़रा घर तो चलो, काका ! मुझे भी अच्छीतरह मालूम नहीं है; न जाने मेरी माँ कहाँ से क्या खबर लाई है !’

मनोरदा ने पतली-सी गरदन पर बड़ा दिखाई देने वाला सिर हिलाकर किसी विचार में लीन हो इसतरह कहा : ‘ऐ...सा !’ और मोती को जवाब दिया : ‘अच्छी बात है, मैं अभी आया ।’ और खटिया पर बैठकर फिर हुक्के की नली मुँह से लगा ली ।

मोती ने जाने से पहले कहा : ‘तुम घर जाकर बैठो, इतने में तो मैं यों आया !’ और दो कदम रखकर फिर ठिठककर बोला : ‘मेरी माँ ने कहा है कि सो रहे हों तो भी उठा लाना ।’

‘ले, मैं तो यह उठा ।’ और हुक्के के दो-चार दम खींचकर उसे दीवार से टिकाते हुए बोले : ‘न जाने इस वक्त क्या काम पड़ा है इसे !’

‘एकबार तुम घर तो आ जाओ, फिर...’ कहता हुआ मोती चल दिया ।

ऐसा लगता था जैसे बड़े मनोरदा का दुबला-पतला और मज़-बूत शरीर इससमय अधिक फुर्तीला हो गया हो । उन्होंने सिरहाने रखा हुआ अँगरखा पहिन लिया, घर में जाकर खूँटी पर टँगा

हुआ गोल गेंडुरी जैसा साफा सिर पर रखा और कमरी भी ओढ़ ली; फिर एक हाथ में लकड़ी और दूसरे में हुक्का लेकर बाहर निकले। चौपाल उतरते ही कुछ याद आया और घर में दो डग रखकर बोले : 'कहाँ गई ? मैं गाँव में जा रहा हूँ, ज़रा बाहर देखना आग न उड़े।' और पीठ फेरी। घर के भीतर से घरवाली कुछ सवाल कर रही थी, लेकिन मनोरदा के कानों के दरवाज़े इस समय खुले होने पर भी मानों बन्द थे। चूँकि हुक्के की धीमी गुड़गुड़ाहट चालू थी, लेकिन वह सब खोई-सी हालत में। दो-चार क्षण बाद उन्होंने फिर दिशा बदली। गलियारा पार करके एक छोर पर आये हुए घर के आँगन का छँका खोलकर अन्दर घुसे और धीरे-धीरे बिछी की तरह कान उठाकर दबे पैरों आगे बढ़े। कड़वी लगाकर ओट की हुई चौपाल में होनेवाली बातचीत के दो-चार शब्द मनोरदा के कानों में पड़े : 'जहाँ जाना हो चली जाये। निकाल दे घर से...' इन शब्दों से मनोरदा का चहरा इस तरह खिल उठा जैसे उनका वहम विश्वास में बदल गया हो। 'जाते-जाते यह मुझे कहाँ से सूझा ?' इस विचार के साथ ही अगर खुद को धन्यवाद देने के लिये अपनी ही पीठ ठोकने का रिवाज होता तो मनोरदा ऐसा भी करते। साहूकारी चाल चलने से पहले उन्होंने मन में उठे प्रश्न का जवाब दे दिया : 'मिल ही जायेगा कोई न कोई बढ़ई; एकबार इस फंदे में से तो छूटने दे !' सोचकर गला खँखारा और 'अरे भई ! कोई है घर में ?' कहते हुए आगे बढ़े।

चौपाल में मानों बिजली गिरी; लेकिन दूसरे ही क्षण आवाज़ आई : 'कौन—मनोर काका ?' और बोलनेवाला जवान चौपाल की कोर तक आ गया।

आदर भेलते हुए मनोरदा ने पलक मारते ही अलाब के मद्धिम उजाले में भी देख लिया कि एक तरफ बैठी हुई बेचर की माँ का मुँह रुआँसा है; थोड़ी दूरी पर सरककर बैठी हुई बेचर की घरवाली के लिये भी उन्हें विश्वास हो गया कि—याँ ही

तापने जितनी अवकाश की बेला अभी नहीं हुई थी।

मनोरदा अलाव की ओर पैर लटकाकर खटिया पर बैठ गये। बेचर ने खटिया के नीचे पड़ी हुई गड़ाऊ में से थोड़ी-सी मसलकर कहा : 'लाओ काका, तमाखू भर दूँ।'।

मनोरदा झुँझलाकर बोल उठे : 'अरे चूल्हे में गई तमाखू !' तीनों जनें सकपका गए। मनोरदा धीमे फिर भी उतावले स्वर में आगे बोले : 'तुम सबने क्या ठानी है; मुझे ज़रा बताओगे ?'

माँ-बेटा एक-दूसरे की ओर ताककर भौंचक्के-से मनोरदा की ओर देखने लगे। बेचर की पत्नी ने धूँधट जरा फैलाया।

फिर हुक्के के दो-तीन सड़ाके लेकर यकायक घुटनों पर झुकते हुए बोले : 'तुम जानते हो ?—एक कहावत है कि—'तेरी माँ ने खसम किया। बोला, बहुत बुरा किया ! फिर छोड़ दिया ! यह तो उससे भी बुरा।'—ऐसी बात है। और कुछ देर रुककर, सबको चुप देखकर बोले : 'तुम लोग तो ऐसा समझते होगे कि कोई जानता ही नहीं; लेकिन तुम्हारा वह दुश्मन तो घर घेर लेने की खटपट में है, समझे ?'

बेचर की माँ घबराये हुए स्वर में बोली : 'लेकिन अब हम क्या करें ? अभागिन ने न करने जैसा कर तो लिया, लेकिन उसका धनी कौन होगा, मनोर लाला ! पेटजाई बिटिया से मैं कैसे कह दूँ कि घर से...'

झुँझलाया हुआ बेचर बीच में ही बोल उठा : 'चुपचाप बैठी रह, आई बड़ी बिटियावाली ! इसी तरह तो तूने उसे सिर पर चढ़ा लिया था। मैंने तो पहले ही कहा था कि भाड़ में जायें वे पैसे, न मिलें तो ! लेकिन उस पटवारी का पीसना...'

मनोरदा बीच में ही बोले : 'देख, सुन ले बेचर; अगर अभी भी मेरा कहा माने तो इसे यहाँ से निकाल दे, नहीं तो अभी हाल तेरा वह दुश्मन मुतियाँ आ धमकेगा; और अगर हाथ लग गई, तो कल सवेरा होते होते न जाने छोरी का क्या होगा—यह मैं नहीं कह सकता ! उसका घरवाला तो उधर गुर्रा रहा है कि कब

हाथ लगे और नाक काटूँ ! शंबू (मोती की माँ) के तो दोनों हाथों में लड्डू हैं—पीहर में शाबाशी मिलेगी और तुझ से वैर लेगी ।' कुछ रुककर फिर बोले : 'इसमें तुम्हारा क्या बिगड़ता है ? न कोई सगा-सम्बन्धी और न जातपात का ठिकाना; लेकिन मुझे तो यह चिन्ता है कि गाँव की नाक कट जायेगी । अगर मुद्दामाल हाथ लग गया तो तुम्हारी जाति तुम्हें छोड़नेवाली है ? एक ही सवाल में पकड़ लेगी कि 'तूने उसे घर में रखा किसके हुक्म से ?'

'जाति तो सबसे पहले पूछेगी ।' और फिर बेचर ने कुछ ठहरकर मनोरदा से कहा : 'लेकिन इसका कोई रास्ता बतला दो काका !' और यकायक गुस्से से दाँत कचकचाकर दबे स्वर में बोला : 'उस जनम की बैरन पर इतना गुस्सा आता है कि अपने हाथ से ही नाक काट लूँ... !'

'ले अब चुप रह, अपने हाथों अपनी जाँघ मत उघाड़ ।' कहकर मनोरदा ने उसे शान्त किया । फिर मोती के बुलावे की, और थोड़ी देर बाद यहाँ खानातलाशी ली जायेगी—ऐसी भविष्यवाणी भी सुना दी । उपाय के लिये गिड़गिड़ाते हुए तीनों को रास्ता बतला दिया :

'देखो, ऐसा करो, चुपचाप बाड़े में होकर उस तरफ खेतों में भगा दो...'

माँ बीच में बोल पड़ी : 'हाय हाय, मनोर लाला ! ऐसी अंधियारी रात में ?' आँखों से आँसू की धाराएँ बह चलीं; बड़ी मुश्किल से आगे बोली : 'फिर...वह...अभागिन...जायेगी कहाँ ?'

बेचर झुल्ला उठा : 'जहन्नुम में, और कहाँ ?'

बेचर की घरवाली बोली : 'पन्द्रह कोस की धरती में कहीं कुआँ भी नहीं मिला...!'

माँ बोली : 'तो...तो कहना ही क्या था !...लेकिन इन आँखों के आगे...'

मनोरदा ने उठते हुए कहा : 'जमना भाभी ! तुम उससे कह

देना कि उस महुए के नीचे जाकर बैठे। कुछ देर बाद मैं आज रात-भर के लिये उसके सोने का इन्तजाम कर दूँगा।' और दो डग भरकर बोले : 'अच्छा, तो मैं जाता हूँ। यह तो मैं सोच-समझकर सब बतलाऊँगा, लेकिन इस बात का ध्यान रखना।' और उसी उदासभाव से कहा : 'नहीं तो अपने ही हाथों मुझे उन कसाइयों को सौंपना पड़ेगा।' कहकर फिर याद दिलाया : 'क्या समझी ? उस महुए के नीचे बैठने को कहना। ज़रा ढाढस बंधाना, नहीं तो गाँव-वालों को पानी की तकलीफ होगी।' फिर बेचर की माँ की ओर देखकर बोले : 'और देखना, तुम कहीं साथ मत जाना ! अगर वे तुम्हें न देखकर ज़्यादा सन्देह में पड़ गये तो और भी आफ़त आ जायेगी।' जाते-जाते कहा : 'मैं उसे अच्छा ठिकाना ढूँढ़ दूँगा।'।

मनोरदा का आखिरी वाक्य सुनकर जमना काँप उठी। मन में सोचा : 'यह हरामी छोरी को कहीं उड़ा तो नहीं देगा !' साथ ही साथ दो-चार ऐसी घटनाएँ भी याद आईं कि जिन्हें पहला घरवाला छोड़कर दूसरा करने में मनोरदा ने मदद की थी। दूसरे ही क्षण वह स्वगत बड़बड़ाई : 'नहीं नहीं, इसने तो उल्टा बेचारियों को दुःख से छुड़ाकर उनका भला किया है ! मरने दो, भले ही थोड़े-बहुत रुपये हजम कर ले, लेकिन बिटिया को ठिकाने लगा दे तो अच्छा है।'।

X

X

X

मनोरदा ने दूर से देखा तो मोती की चौपाल में चार-पाँच आदमी बैठे थे, और अलाव की तरफ चौखट से टिककर एक औरत खड़ी थी—विचित्र ढंग से। दाहिने पैर का पँजा पीछे दीवार से अड़ा था, और दोनों हाथ अदब की हालत में पीठ के पीछे रखकर दीवार से सटकर खड़ी थी। मनोरदा तो क्या, गाँव का छोटा-सा बच्चा भी समझ जाता कि वह मोती की माँ, अंबा बड़हन थी। धक्कते हुए अलाव की रोशनी के आगे दीये का प्रकाश निरर्थक था, फिर भी वह दीवट पर रखा टिमटिमा रहा था। मनोरदा ने अंबा के बन्द होंठ और गुस्सा भरी आँखों पर ध्यान न देकर चौपाल में घुसते हुए

हँसकर कहा : 'छिलपे और तेल दोनों किमलिये जला रही हो अंबा भाभी ?' और मोती की ओर देखे बिना उसके हाथ में हुक्का धमाकर बोले : 'ले, जरा तमाखू भर ले ।'

अम्बा की चमकती हुई आँखें क्षणभर मनोरदा पर ठहर गई । फिर शरमाकर मुँह फेर लिया और बोली : 'तुम्हारे लिये !'

'अम्बा भाभी, वन (पंचावन) पूरा होगया लेकिन तुम नहीं बदलीं !' कहकर अम्बा की तरफ देखकर कुछ हँसे । खाली की हुई खटिया के सिरहाने बैठते हुए बोले : 'वही तुम्हारा रूठना और वही बोलना ! किसी भी दिन तुम मुझे ताना मारे बिना...'

'ताना तो मारूँगी ही । कब से मुतियाँ को बुलाने भेजा था, लेकिन अभी दर्शन हुए हैं ?'

'ऐसा कहो कि आ गया ! नहीं तो किसी दूसरे का कोई भी काम होता तो भी ऐसी ठंड में...' और अम्बा की ओर देखकर : 'सच कहता हूँ अम्बा भाभी, अब पहले जैसी ताकत नहीं रही ।'

अंबा ने हँसी रोकते हुए कहा : 'यह सच है, लेकिन मुझे कहाँ तुम से चक्की पिसाना थी ?'

'याद कर लो अम्बा भाभी, तुम्हारे घर तो यह भी किया है !'

अगर उससमय अम्बा का दिमाग ठिकाने होता तो पेटजाये लडके की और उन दो-चार की परवाह किये बिना कह देती : 'गरज के बिना कोई कुछ नहीं करता !' और शायद धरती से उड़ने के लिये तैयार अपनी जवानी की फिक्र में घर का काम छोड़कर अधिक समय यहीं—ठलुआ बैठकर—बितानेवाले, पतंगों की तरह आशिक गाँव के दो-चार जवानों के नाम भी लेने लगती तो उसमें कोई नई बात न थी । पंचावनेक वर्ष हो चुकने पर भी आज तक अम्बा से कोई 'बुड्डी' कहने की हिम्मत नहीं कर सका था ।

अम्बा ने पैर नीचे रख लिया । घूँघट कुछ नीचे खींचा, फिर दीवार से टिककर बोली : 'यह सब फुरसत में याद करना, लेकिन इस वक्त जो काम आ पड़ा है उसके लिये कुछ करो न ?'

‘काहे का ? कुछ कहोगी या ऐसे ही ?’ कहते हुए हाथ में हुक्का लेकर सामने बैठे हुए अपनी उम्र के वीरा पटेल की ओर देखा ।

वीरा ने धीमे स्वर में मनोरदा से कहा : ‘वह बेचरिया बड़ई की बे’न भूमकू है न ? दो महीने पहले...’

‘अरे हाँ, हाँ ! हरामजादी ने सारे गाँव को नीचा दिखाया । लेकिन अब क्या है उसका ?’ मानों कुछ जानते ही न हाँ इमतरह बोले ।

फिर बाद में वीरा ने जो कुछ कहा उसका अर्थ यह होता था कि—थोड़ी ही देर पहले अम्बा को किसी ने खबर दी है कि उसने किसी औरत को बेचर के वाड़े में लुकते-छिपते देखा है, और उसे विश्वास है कि भूमकू के सिवा दूसरा कोई हो ही नहीं सकता ।

फिर तो अम्बा ने उस शंका को साबित करने के लिये ऐसा भी कहा कि भूमकू को उड़ा ले जाने वाले पटवारी को पंचों ने जात से बाहर कर दिया है, और उसके कुटुंबी तो उसे गाँव में से भी निकाल रहे हैं । और फिर बोली : ‘मुझे तो पक्का विश्वास है मनोर-लाला ! कि उस बार्मन ने रांड को निकाल ही दिया है ।’—और दांत पीसकर बोली : ‘बाप रे बाप ! कब मेरे हाथ में आये और कब इस बेचरिया की फजैती देखूँ ! अभी तो भैयासा’ब बड़ा पुछुछा लटकाये फिरते हैं । अभी तो कुछ नहीं कहती लेकिन एक बार भूमकू को आने दो दाव में, फिर...’

मनोरदा ने अम्बा को शांत करते हुए कहा : ‘अगर तुम्हें ऐसा लगता हो तो चलो ले लें बेचरिया के घर की खानातलाशी और बांध दें रांड को अथाई में ।’

अम्बा का कलेजा कुछ टंडा हुआ । वह बोली : ‘इसीलिये तो तुम्हें बुलाया है ।’

मनोरदा एकदम खड़े हो गये और बोले : ‘अच्छी बात है, उठ वीरा ! मोती, तू भी चल ।’ और फिर अम्बा से पूछा : ‘इससे पहले किसी से बात तो नहीं की है न ?’

‘मैं बात करूँगी ? इसीलिये तो मुतियाँ तक से बात नहीं की

थी, नहीं तो तुमसे जरूर कहलाती कि ऐसी ऐसी बात है।’

‘तो अच्छी बात है, लेकिन कहीं ऐसा न हो कि किसी ने रस्मी का साँप बना दिया हो?’

‘नहीं, ऐसा नहीं है, कहने वाला आदमी कभी झूठ नहीं बोल सकता!’ अम्बा ने कहा।

‘कौन है वह?’ मनोरदाने निकट जाकर पूछा।

और जब अम्बा ने धीरे से नाम लिया तब फिर मनोरदा बोले: ‘हो सकता है कि अंधेरे में अच्छीतरह न पहिचाना हो?’

‘अरे, क्या न पहिचाने? मैं तो रूबरू कहला देती लेकिन वे खेत पर बसने को चले गये होंगे।’

‘अगर होगी, तब तो समझ लो कि उसे बाँध ही दिया है।’ कहते हुए मनोरदा आगे बढ़े। उनके पैर इतने जोर से उठते थे कि अम्बा को भी विश्वास हो गया: ‘अब तो बाँध गई राँड!’ और फिर तो कब दिन उगे और कब बढ़ियों की पंचायत बेचर को जात-बाहर करे—इसकी अवीरता भी बढ़ गई। फिर मन ही मन भगड़े का वह दिन भी याद करने लगी। जब भूमकू का घरवाला उसे पीटता था तब वह पीहर भाग आती थी। ऐसा दो-तीन बार हो चुका था। लोगों में बातें होने लगीं कि भूमकू जरूर दूसरा घरवाला कर लेगी! अम्बा को भी इस बात का विश्वास हो गया था। भूमकू की ससुराल में ही उसका पीहर था। वहाँ भी रोज़ के भगड़े से तंग आये हुए बड़े-बूढ़ों के मुँह से एक-दो बार कानोंकान सुना था: ‘हत्यारी राँड! कहीं काला मुँह करे तो भी अच्छा हो!’ यह सारा भगड़ा अपने बालविधुर लड़के मोती को लाभदायी होगा, ऐसा लगते ही अंबा ने बेचर से चुपचाप बात चलाई। बेचर ने कड़े शब्दों में जबाब के साथ ताना भी दिया: ‘यह तो तुम जैसों का काम है! अपने खानदान की तराजू में अगर बेचर के खानदान को तौलती हो तो भूल जाना!’ यह शब्द सुनते ही अंबा जलकर झाक हो गई। फिर तो ‘ससुराल में सुख नहीं और पीहर में चैन

‘नहीं’—ऐसी भूमकू का दिल एक जवान ब्राह्मण पटवारी से लग गया और एक दिन गाँव के साथ अंबा ने भी जाना कि दोनों भाग गये हैं। अभी भी अंबा का कलेजा ठंडा नहीं हुआ था। पंचों के आगे बेचर बोल उठा : ‘मैं क्या जानूँ ? वह जाने या उसके ससुरालवाले जानें ! मेरे घर से थोड़े ही भाग गई है ?’ पंचों के हाथ नीचे गिर गये। बेचर की नाक कट गई है इतने से ही अंबा को संतोष हुआ; लेकिन आज जब उसे मालूम हुआ कि बेचर जाति के चुंगल में फँस गया है, तब वह खुशी से फूल उठी और कल उसे पंचों के बीच कैसे-कैसे ताने मारेगी उनकी ‘रिहर्सल’ मन ही मन करने लगी।

अंबा के पास से निकलते समय मनोरदा के पैरों में जो गति थी वह कुछ दूर चलने पर मन्द हो गई। दूसरे गलियारे का नुक़ब आते ही वे रुक गये। पीछे चलनेवाले तीनों ने भी उनका अनुकरण किया। कुछ देर सोचकर बोले : ‘भूला ! तू ऐसा कर; बेचर के पिछले दरवाज़े पर जाकर छिप जा; ऐसा न हो कि वह कहीं रफूचकर हो जाये !’

मोती तो मनोर काका की इस दूरदर्शिता पर बड़ा खुश हुआ। फिर वे बोले : ‘और हमें एक-एक करके जाना चाहिए वीरा ! ऐसा कर, तू पहले जा; हो-हल्ला करने में कोई फायदा नहीं है।’

और लगभग दस-पन्द्रह गज की दूरी रखकर दोनों वीरा के पीछे चलने लगे।

मनोरदा अलाव की ओर न जाकर सीधे दरवाजे पर जाकर खड़े हो गये। वीरा को देखकर ‘क्यों वीरा काका, इस समय कैसे ? आओ, बैठो !’ कहते हुए बेचर से कहा : ‘अरे बेचर ! ज़रा दरवाज़ा तो खोल !’

बेचर ने दो आवाज़ें देकर माँ को जगाया और दरवाज़ा खुल-बाया। सब अंदर घुसे और दरवाज़ा बन्द करा दिया। दरवाज़े की बाजू वाले चूल्हे में आग कुछ कुछ सुलग रही थी।

मनोरदा ने हुक्म दिया : 'जरा दिया जला ले और थोड़ी-सी कड़वी भी ला।' उन्होंने बेचर से—'यह सब क्या है, काका ?'—ऐसे प्रश्न की आशा रखी होगी, लेकिन वह कमबख्त कुछ पूछे तब न ? आखिर वे घुरक उठे : 'मेरी तरफ क्या देख रहा है ? अभी हाल खबर पड़ेगी ! कमबख्त बढ़ई की जात !' और वीरा को हाथ में दीया लेता देखकर बोले : 'देख तो वीरा ! भोला-भाला बनकर मुझसे पूछ रहा है कि—हैं क्या काका ? बे'न सत्कर्म' करके आई है और उसे घर में रख लिया !'

बेचर की माँ बोली : 'ना, माँ-बाप ! किसने यह बात उड़ाई ? भले ही वह राँड मर जाये, लेकिन उसे घर में रखना तो दूर रहा, उसका मुँह भी नहीं देखूँगी !'

अब बेचर के मुँह में जीभ आई। वह बोला : 'विश्वास न आता हो तो देख लो, यह पड़ा है घर।'

और मनोरदा ने गालियों की बरसात चालू रखकर तलाशी शुरू कर दी। उन्होंने बड़ी सावधानी से खटियों के नीचे, गौहरे में और रसोईघर में—इसतरह कोना-कोना छान मारा और घास से भरे हुए घर में भी मोती से कहकर ढुंढवाया; लेकिन घर में हो तो मिले न ?

मूला को बुलाकर पूछने पर भी वहाँ फिर से तलाश की।

जाते-जाते मनोरदा खिसियाकर बोले : 'यह तो मरनेवाले (बेचर के पिता) का मुँह याद आता है, नहीं तो दिन दहाड़े पुलिस को बुलाकर खानातलाशी कराता। अबकी बार तो बच गये ! लेकिन फिर से फँसने पर इस धोखेबाजी का बदला न लिया तो मेरा नाम मनोर मुखिया मत कहना !' कहते हुए घर से बाहर निकल गये।

उन्हें चौपाल से उतरता देखकर बेचर ने कहा : 'मनोर काका ! थोड़ी तमाखू...'

मनोरदा बीच में ही घुरक उठे : 'तुम्हें तो लाज नहीं आती,

लेकिन मुझे आती है ! क्या मुँह लेकर तमाखू पिऊँ ?' और चल दिये।

रास्ता चलते हुए उन्होंने चुप्पी भंग की। उनके स्वर में कोमलता थी : 'वीरा ! यह तो ठीक है कि गाँव में कोई नहीं जानता, और अपने में भी कोई ऐसा नहीं है जो बात फैलाए; नहीं तो अगर कोई सुनेगा तो हम से क्या कहेगा ? मुझे तो चुल्लू भर पानी में डूब मरने का समय आयेगा !'

मनोरदा के साथ पंचायत में खड़े रहने का अपना सद्भाग्य समझने वाले और अपनी नाममकी से वाकिफ वीरा ने उतनी ही कोमलता और उदासभाव से जवाब दिया : 'सच कहते हो मनोर-भैया ! मुझे याद नहीं आता कि आज तक तुम कहीं से इसतरह खाली हाथ लौटे होगे !'

कुछ रुककर मनोरदा बोले : 'सच पूछ वीरा, तो मुझे तो पहले से ही लगता था कि इस बात में कोई दम नहीं है। हमें खुद ही सोचना चाहिए कि कुल की नाक काटने वाली को कोई घर में क्रदम रखने भी देगा ? और देखो न, खुद बेचरिया ही कहता था कि जिसने सातों पीढ़ियों की इज्जत पर पानी फेर दिया वह बे'न कैसी ? लेकिन मैंने सोचा कि अगर इन्कार करूँगा तो अंबा भाभी नाराज़ हो जायेंगी और जनमभर के लिये मेरे सिर अपयश की गँठरी लद जायेगी !'

'सच्ची बात है !' वीरा ने कहा।

'मैं तो मुत्तियाँ से यही कहना चाहता हूँ कि जो हो गया सो हो गया, लेकिन अब सोच-समझकर काम करना। और लोगबाग तो ऐसी-ऐसी बातें उड़ायेंगे जो कभी किसी ने सुनी भी न हों ! अभी सुनना तो सही !'

मूला ने समर्थन किया : 'सच कहते हो मनोरदा, उस समय जब भूमकू घर से भाग गई थी तब भी ऐसी ही बातें उड़ी थीं ! कोई कहता था कि माताजी की टेकरी पर, तो कोई बेचारे मगना

बढ़ई के घर रोटी बनाते देख आया था ! और निकली पन्द्रह कोस की दूरी पर !

‘और वह भी गाय के दाँत जैसे दिखाई देनेवाले पटवारी के घर !’ वीरा ने कहा ।

कुछ रुककर मनोरदा बड़बड़ाये : ‘अगर सचमुच हमने अपनी आँखों में धूल ही डाल ली होगी तो देखता हूँ ! आखिर जायेगी कहाँ ? सवेरा होते-होते तो अथाई में बाँध दूँगा ! और प्रण लेने के बाद गम्भीर होकर मोती से बोले : ‘देखना हाँ, मुतियाँ ! कहीं बड़बड़ मत करना । अपनी माँ से कह देना कि—देख लो, जो बड़े सयाने होते हैं वे इसतरह ठगे जाते हैं !’ और फिर राज्य के कायदे-कानून की बातें भी कीं ।

वीरा और मूला हँसे और ‘सवेरे जल्दी उठना, मनोर काका !’ कहकर चल दिये ।

मनोरदा मभ ही मन बोले : ‘जल्दी क्या खाक उठूँगा । ऐसा मालूम होता है कि रातभर सो भी नहीं सकूँगा !’

×

×

×

मनोरदा ने अपनी खटिया की रखवाली करती हुई घरवाली को जगाया ।

घरवाली ने आँखें मसलते हुए पूछा : ‘ऊँ...हूँ हूँ हूँ ! अभी तक कहाँ गये थे ?’

मनोरदा ने अलाव के पास बैठकर चिलम उँडेलते हुए कहा : ‘जहाँ गया था वहाँ ठीक ही गया था !’ अलाव के धुंधले प्रकाश में उनका मुँह ऐसा दिखाई देता था कि मानों किसी उधेड़-बुन में हों ।

‘फिर भी ?’ घरवाली ने पूछा ।

मनोरदा इस तरह बोले मानों अपनी धुन में बोल रहे हों : ‘अभी तक तो सब बिलकुल बराबर रहा, लेकिन अब क्या किया जाय ?’ और चिलम में अंगारे रखने लगे ।

घरवाली ने पैर नीचे लटकाये और चिढ़कर बोली : 'चूल्हे में जायें तुम्हारे ढंग ! कभी सीधी बात भी नहीं करते !'

चूँकि मनोरदा 'लेकिन इसमें तुझे क्या खबर पड़ेगी ?' कहकर हुक्का गुड़गुड़ाने लगे, फिर भी उन्हें घरवाली के कोपभरे आग्रह के वश होना ही पड़ा। उन्होंने भ्रमकू की—परित्यक्ता भ्रमकू की—शुरू से लेकर आखिर तक पूरी बात सुनाई। फिर कुछ रुककर बोले : 'वहाँ बैठा तो दिया है, लेकिन अब करना क्या ?' पाँच-पच्चीस जरूर मिल जाते, लेकिन यह तो साला परजात का मामला है न ?'

'पाँ...च और पच्चीस !' घरवाली ने सिर पीटते हुए कहा। फिर मुँह मटका कर बोली : 'तुम्हारी जगह कोई दूसरा होता तो अभीतक सोने के नलिये हो जाते, सोने के !' मनोरदा को चुप देखकर बोली : 'आए बड़े पंचा'ती ! देखा उस जग्गू बुड्ढे को ? सिर्फ दस बरस तक मुखियाई की, लेकिन लड़कों के लड़के भी खाते रहें तो भी पूरा न हो इतना रख गया ! इसका नाम है मुखियाई !'

घरवाली धीमे स्वर में बोल रही थी, फिर भी मनोरदा ने धीरे से बोलने के लिये इशारा किया, और हुक्के का घूँट लेते हुए घरवाली की ओर देखकर बोले : 'तुझे खबर है जग्गू ने यह सब कैसे इकट्ठा किया ?' फिर कुछ रुककर बोले : 'लोगों की चार चार लड़कियाँ बेचकर खा गया, कहीं कमाने के लिये नहीं गया था !'

'लेकिन वह भी आना चाहिये न ? तुम्हारी जगह अगर वह होता तो इसी के एक थैलीभर रुपये मार लाता !'

मनोरदा कुछ न बोले। अलाव की टंडी पड़ती हुई आग की ओर देखते हुए हुक्का गुड़गुड़ाने लगे।

घरवाली आगे बोली : 'दो बरस से तुम्हीं तो उसकी जगह मुखियाई कर रहे हो—तुमने क्या कमाया ? उलटे बाप-दादों के गहने

चाँटकर बैठ गये हो !'

मनोरदा सिर उठाये बिना ही बोले : जिन्दा रहेंगे तो फिर बनवायेंगे ।'

उनके इस ठंडे जवाब से घरवाली और भी झुल्ला उठी । इस-तरह झपटकर खड़ी हुई मानो मनोरदा को मारने ही उठी हो । मनोरदा के पास बैठकर हाथ मटकाती हुई दबी आवाज में घुरकी : 'तुम क्या करोगे ? जरा अपनी सूत तो देखो ! महसूल भरने के लिये तो बहू की हँसली गिरवी रख आये और फिर शेखी बघारते हो ? एक महीने बाद आयेगी तब क्या जवाब दोगे अपनी माँ को ?'

मनोरदा ने गुस्से में आकर आँखें तरेरते हुए घरवाली से कहा : 'चबड़ चबड़ मत कर, चुप रहेगी या नहीं ?' कहकर फिर हुक्का पीने लगे ।

घरवाली फिर बोली : 'मुझे तो चुप कर दोगे, लेकिन महीने बाद लोगों को चुप कर देना तब समझूँगी मर्द का बेटा ! बहू भी भाग्य से ऐसी मिली है कि अगर गधे पर न चढ़ा दे तो कहना !'

मनोरदा कुछ न बोले ।

घरवाली फिर बड़बड़ाई : 'जहाँ देखो वहाँ हुक्का और मुफ्त की पंचात ! न तो खेत की ओर देखना और न घर का कोई काम करना, दिनभर भटक भटककर...'

मनोरदा तंग आकर बोले : 'अब घर में जाती है कि नहीं ?' और कुछ रुक कर बोले : 'कोई बुलाने आये तो जाना ही पड़ता है !'

'लोग तो बुलायेंगे ही, तुम्हारे बापदादे ऐसा कह गये होंगे कि बेटा, गाँठ का खाना और ठलुओं के साथ...'

'गाँठ का कैसे ?' और फिर घरवाली की ओर देख कर तिरस्कार के साथ कहा : 'झूठ बोलते शरम भी नहीं आती ? किसदिन खाली हाथ लौटा हूँ ? ज़्यादा नहीं तो भी...'

'ओ हो हो हो, कभी दो-चार रुपट्टी ले आए होंगे उसमें तो मानो निहाल हो गये !'

मनोरदा एकदम तंग आकर बोले : 'तो क्या मेरे बाप ने गाढ़ रखे हैं जो थैली उठा लाऊँ ? न जाने क्या सोच कर बोलती होगी यह !'

'बाप तो सब कुछ छोड़ गया था लेकिन सब इस पंचा'त ही पंचा'त में गँवा दिया ! बड़े पंचा'ती !'

'लेकिन कुछ कहेगी भी कि तू कैसी पंचा'त कराना चाहती है ? मेरी तो जान खा ली !'

घरवाली अपनी धुन में ही बोल रही थी : 'माँ-बाप का नाश हो जाय, ऐसी जगह पटका कि दो दिन न तो खुशी से पहिने-ओढ़ने को मिला और न आराम से खाने को !' मनोरदा ने विषाद-पूर्ण हास्य किया, फिर कुछ विचार कर रहे हों इस तरह बोले :

'ले उठ अब, सो जा, बखत आने दे भगवान करेगा तो सब कुछ मिल जायगा !'

घरवाली दुःख भरे स्वर में चिढ़कर बोली : 'अब मिलेगा मसान में ! पहिनने के दिन हैं उसको मिल जाय तो भी बहुत है ! लेकिन वह तो...'

'क्यों नहीं मिलेगा, उसे भी मिलेगा !' मनोरदा विचार की धुन में ही बोल रहे थे !

मनोरदा को ऐसा लगा कि घरवाली का गुस्सा आपे से बाहर हो जायेगा। दाँतों में होकर आवाज़ निकल पड़ेगी ! 'बेचारी का था वह तो उलटा...' घरवाली का गला भर आया।

मनोरदा बीच ही में बोल उठे : 'अरी तू ज़रा देख तो सही... मुझे ज़रा...'

घरवाली ने हायसाँस भरते हुए शांति से कहा : 'देखते ही देखते मेरी तो आँखें फूट गई !' और उठने की तैयारी करते-करते बोली : 'मैं तो कहती हूँ कि बहू के वे गहने उठा लाओ तो भी बहुत है !'

'और तेरे लिये सोने की हँसली ?' मनोरदा मज़े में आ गये थे।

घरवाली गहरी साँस लेकर खड़ी हो गई और बड़बड़ाई : 'वे दिन कहाँ जब मियाँ के पैर में जूती...!'

मनोरदा ने कुछ हँसकर स्नेहपूर्ण स्वर में कहा : 'ज़रा ठहर तो सही !' अपनी शोकपूर्ण मुखमुद्रा में कुछ गुस्सा भरकर सामने देखती हुई घरवाली से कहा : 'अगर जगू की बहू जैसी हँसली बनवा दूँ तो बोल, क्या देगी ?'

मनोरदा की सूरत, घरवाली की ओर लगी हुई आँखें और हाव-भाव देखकर तुरन्त समझ में आ सकता था कि अधिक नहीं तो कम से कम उन्होंने घरवाली के मीठे हास्य की आशा तो ज़रूर रखी है। लेकिन आज घरवाली ने उनकी उस आशा के साथ ही साथ उनके आत्मगौरव की भी हत्या कर दी। क्रोध और तिरस्कार के साथ 'दूसरी बात तो दूर रही, लेकिन तुम उसके जूते में भी पैर डाल सकोगे ?' कहकर मुँह चढ़ाकर घर में चली गई।

मनोरदा को भी शायद यह बात सच मालूम हुई होगी : क्या कहते ?

मनोरदा ने फिर से हुक्का भरा और मानों बेभान होकर पी रहे हों इस तरह गुड़गुड़ाने लगे। करीब आध घंटे बाद हुक्के को एक ओर रखकर बल्कि छिपाकर, गुदड़ी को खटिया के बीच आदमी के आकार में जमाया और वेश में कुछ परिवर्तन करके लकड़ी लेकर चल दिये।

महुए के पास आकर देखा तो एक आकृति तने के साथ सटकर बैठी थी। पूछा : 'कौन, भूमकू ?'

'हाँ काका !' आवाज धीमी, रुआँसी थी, फिर भी उसमें आनन्द की पुट थी।

'चल उठ; उस बारी के किनारे-किनारे आगे चल; मैं पीछे-पीछे आता हूँ।'

'कहाँ, मनोर काका ?'

'कहाँ ? चूल्हे में...महादेव की दिशा में। डोकरी ने काम सौंपा

इसलिये करना ही पड़ेगा ! जवानी के जोश में आँधी होकर मन-मानी की, और अब सब को दुःख देने बैठी है !' और कम्बल को ठीकठाक करके बोले : 'दिल तो कहता था कि मरने दूँ ! ले चल आगे हो जा !'

भूमकू आगे होकर बारी की ओट में चलने लगी । बीस-पच्चीस कदम का फासला रखकर मनोरदा भी पीछे हो लिए ।

कच्चे-पुच्चे हृदयों को ठंडा कर दे ऐसी पौष की ठंड पड़ रही थी । मन्द गति से बहती हुई वायु इस तरह हृदयों के आवरण को भेदने का प्रयत्न कर रही थी मानों उस ठंड से बचने के लिये किसी के हृदय की गरमाहट ढूँढ़ रही हो । चारों ओर खड़ी हुई फसल माना ठंड से काँप रही थी । रखवाली के लिये आये हुए हलवाहे गुदड़ी में छिपे हाथों से अलाव की लकड़ियों को संकोर कर बुझती हुई अग्नि को जिलाकर मानों खुद जी रहे हों ऐसा मालूम होता था । किसी-किसी खलिहान से ए...ई की आवाज़ आती थी, कभी कभी उसकी प्रतिध्वनि सुनाई देती थी तो कभी बिना प्रतिध्वनि के समा जाती थी । न तो पत्तियों की कोई आवाज़ आती थी और न जानवरों की आवाज़ सुनाई देती थी । चारों ओर क्षण-भर के लिये नीरव शांति फैल जाती थी और उसमें से ऐसी आवाज़ —आवाज का भास होता था मानों कोई बिना रुके या बिना बोले एक-सी गति में बह रहा हो ! उस बहती हुई महाकाली रात्रि को देखने में और उसमें से उद्भूत किसी गहन विचार में पड़ गये हों ऐसे दिखाई देनेवाले ताराओं में से कोई कोई उतावला तारा खिरता था और रात्रि के श्याम अंचल को चीरने का प्रयत्न करते हुए दूसरे ही क्षण उसी रात्रि की मुट्ठी से कहीं मसला जाता था ।

एक के बाद दूसरी बारी को पार करती हुई भूमकू के कानों में आवाज आई : 'ए...खड़ी रह, खड़ी !' भूमकू वहीं ठिठक गई और घबराई हुई नजर से पीछे देखा । थोड़ी दूरी पर मनोरदा नीचे झुककर एकदम पैर उठा रहे थे । रखवाले की दूसरी आवाज ने

—‘खड़ी रह, तू यहाँ खाने आई है !’ मनोरदा को कुछ हिम्मत बंधाई; लेकिन भूमकू एकदम भड़क उठी :—‘अब क्या होगा !’

मनोरदा ने भूमकू के पास आकर कहा : ‘चल, चल, जरा जल्दी पैर उठा, वह तो गाय समझकर चिल्ला रहा है ।’

भूमकू के पैरों में फिर शक्ति आ गई और मनोरदा के कहे अनुसार वह बारी की ओट में चलने लगी। कभी कभी उसकी साड़ी कांटों में उलझ जाती थी लेकिन वह साड़ी फटने की परवाह किये बिना खींचकर आगे बढ़ रही थी।

खेतों के बाद नदी आई और भूमकू किनारे पर खड़ी हो गई। मनोरदा ने कहा : ‘खड़ी रह, मैं ज़रा...’ कहकर आगे कुछ न बोले। कुछ इधर-उधर होकर थोड़ी देरतक नदी पर नजर फेंकी : मालूम होता है कि पानी पीने के लिये आनेवाले बाघ भेड़ियों की जगह होगी ! फिर दोनों ढाल उतरने लगे। मनोरदा ने कहा :

‘अब साथ में चलेगी तो भी कोई डर की बात नहीं है !’

भूमकू को डर लगा, वह बोली : ‘काका, अगर कोई जानवर पानी पीने के लिये...’

‘तू मेरी बगल में चली चल —मैं हूँ फिर तू घबराती किस लिये है ?’

उस क्षण मनोरदा या भूमकू ने कुछ विचार किया होता तो समझ में आ सकता था कि मनुष्य जाति को अगर किसी का ज़्यादा से ज़्यादा डर हो—अगर कोई उसके प्रति अधिक से अधिक क्रूर हो तो मनुष्य ही है। नदी का चढ़ाव चढ़ने के बाद घोर जंगल में घुसने पर भी उनके हृदय और चाल कह देते थे मानो घाटी लांघकर किसी गांव के निकट आ पहुँचे हों !

आधेक घंटे बाद दोनों को अलाव की लपटें दिखाई दीं और मनोरदा ने चुपपी तोड़ी :

‘छोरी, तुझे दो-चार दिन इस महादेव के मंदिर में रहना पड़ेगा। गांव में सब शांत हो जाने के बाद मैं तुझे ले जाऊँगा !’

‘कहाँ काका ?’ भूमकू ने मनोरदा के सामने ताकते हुए पूछा।
 ‘कहीं भी तुम्हें ठिकाने तो लगाना ही पड़ेगा ! ‘जब मुँडी भिगो ली तो मुँडाना ही पड़ेगा न ?’ कुछ अकुलाकर मनोरदा बोले !

बेचारी भूमकू चुप हो गई ।

कुछ देर बाद मनोरदा बोले : ‘लेकिन देखना, यहाँ तुम्हें बहुत ही संभलकर रहना पड़ेगा। अगर कहीं जरा सी भी गंध आई तो तू जाने या फिर तेरा वह कसाई घरवाला; मेरे हाथ की बात नहीं रहेगी।’ और थोड़ी देर चुप रहकर गोल गोल शब्दों में यह भी बतला दिया कि इन चार दिनों के बाद भूमकू की ग्रहदशा दूर होजायगी। भूमकू को भी लगा कि मनोर काका किसी अच्छे घर उसका ठिकाना लगा देंगे।

किसी ऋषि-मुनि के साथ जटा बाँधकर तप करने के लिये बैठा न हो, ऐसे एक पुराने मंदिर के पास आकर मनोरदा ने धीरे से भूमकू से कहा : ‘ऐसा कर, तू जरा उस दीवाल के पास खड़ी रह, मैं जरा बातों में बाबा का मन ले लूँ।’

मनोरदा ने सीढ़ियाँ चढ़ते हुए खाँसा। ‘कौन है रे ?’ एक पांसठेक वर्ष के बुढ़े साधु ने सिर उठाकर देखा। आँखें गड़ाकर धूनी के प्रकाश में पहिचान लिया और बैठकर बोले: ‘मनोर मुखिया ! तुम इस वक्त कहाँ से ?’ फिर इधर-उधर देखकर पूछा :

‘क्या अकेला है ?’

मनोर मुखिया धूनी के पास बैठ गये और हाथ लंबाकर तापते हुए बोले : ‘तुम्हारे पास आकर झूठ तो नहीं बोलूँगा मा’राज ! ले...कि...न !’ कहकर चुप हो गये।

‘इधर आया है तो फिर बात तो कहेनी ही पड़ेगी न ?’ कहकर महाराज कुछ हँसे, बगल में पड़ा हुआ तमाखू का बटुवा बतलाते बोले : ‘एक दफे तमाखू-बमाखू भर, जरा गरमी आने दे, फिर अगर ठीक लगे तो कहेना।’

मनोरदा ने चिलम भरकर पहले महाराज को दी, फिर खुद पीने लगे। धुएँ के बादलों की ओट में उन्होंने छिपी नज़र से महाराज की ओर देखा। उम्र तो उनके जितनी ही होगी लेकिन सफेद डाढ़ी और जटायें करीब ड्योढ़ी बतला रही थीं। धूनी की ओर लगी हुई उनकी गहरी और चमकती हुई आँखों को मनोरदा अधिक देर तक न देख सके। यों तो उन्होंने महाराज को कई बार देखा था, बातें भी खूब की थीं, महाराज भी जब जब गांव में आते थे तब जरूर उनके घर एक चक्कर लगा जाते थे और इसलिये वे उनके आत्मीय जैसे थे, फिर भी मनोरदा की समझ में नहीं आ रहा था कि उनकी नज़र आज महाराज की नज़र से क्यों नहीं मिलती थी ?

मनोरदा को चिमल उँडेलता देखकर महाराज ने पूछा : 'क्यों ठंड उड़ गई मुखिया ?' और फिर जमकर बैठते हुए पूछा : 'बोली, क्या बात है ?' उनकी हँसी ऐसी थी कि चाहे जैसे आदमी को एक-बार विश्वास आ ही जाय।

मनोरदा ने ज़रा पास सरकते हुए : 'बात यह है मा'राज !' कहकर शुरुआत की और गांव में सरकारी काम के लिये समय-समय पर आनेवाले पटवारी के साथ झमकू की किस तरह पहि-चान हुई, और आखिर वह विवाहित पति को छोड़कर कब भाग गई यह भी उन्होंने कह सुनाया। एक दो प्रसंगों का वर्णन करके झमकू के पति की क्रूरता और उसकी बुरी दशा बतलाई। फिर झमकू के भाई और माँ ने झमकू को उन्हें सौंपकर ठिकाने लगा देने की प्रार्थना की है, यह कहकर दूसरी ओर राज्य, गांव के लोगों की और बढ़इयों की जाति का डर बतलाया और उस धर्मसंकट का चित्रण कर के कहा : 'मा'राज, आप कहते हो कि मुखिया इस समय कहाँ से ? लेकिन आप ही बतलाइये कि अब मैं क्या करूँ ? अगर कचै'री में जाकर सौंपता हूँ तो वह फिर उसी कसाई को सौंप देगी और मान लो कि उसने रख लिया तो क्या वह उसे

जीने देगा ?—किसी बड़ई के घर में बैठी होती तो बात इतनी न बढ़ती, लेकिन यह तो—चाहे जैसी ऊँची जात—लेकिन है तो दूसरी न ?

महाराज भी उदास दिखाई देते थे। बोले : 'ये जातपात के बड़े झगड़े हैं।' फिर मुखिया की ओर देखकर पूछा : 'तो फिर वो लड़की अभी है कहाँ ?'

'यहीं है मा'राज !' कहते हुए मनोरदा खड़े हुए और झूमकू को बुला लाये।

'अरे रे, बिचारी को ठंडी में बिठा रखा था ? बैठ बेटा, आ, इधर आ, ताप !'

चलते-फिरते हुए यन्त्र जैसी झूमकू धूनी से कुछ दूरी पर बैठ गई। महाराज ने उसे पास आने के लिये बहुत समझाया, लेकिन वह नहीं आई। महाराज ने कुछ मीठे और अकुलाये हुए स्वर में कहा : 'अरी अभागिनी, खाली ठंड में क्यों मरती है !' और मानो माता के खप्पर में धरी हुई बलि की ओर देख रहे हों इसतरह देखते रहे।

झूमकू के आँसू शायद खत्म हो गये होंगे लेकिन उसके मुँह पर आँसू का लेप साफ साफ दिखाई देता था।

थोड़ी देर बाद महाराज ने पूछा : 'हाँ, तो फिर इसका करना क्या है ?—इसको इधर क्यों ले आये मुखिया ?'

'मैं तो आपके हवाले करने आया हूँ मा'राज, अब आप जानो या ये जाने।'

महाराज कुछ हँसे : 'तुम्हारा दिमाग तो ठिकाने है न ? मैं इसका क्या करूँ ?'

'दूसरा क्या, इसे जहाँ ठीक समझें वहाँ ठिकाने लगा दें मा'राज ! मुझे तो इससे ज्यादा गाँव के कुएँ की फिकर है।'

गाँव के कुएँ बचाने के लिये इसको इधर ले आये हो क्यों ? मगर कल तुम ही गाँव के लोगों को लेकर इधर आओगे और

बेचारे इस पुराने मन्दिर को जला डालोगे उसका क्या ?' कहकर मानों किसी दूसरे को उद्देश कर कह रहे हों इस तरह बोले : 'क्या इतने दूर जंगल में भी नहीं रहने दोगे ?'

'तो फिर इसका क्या किया जाय मा'राज ?'

'मुझ से क्या पूछते हो मुखिया ?' और कुछ रुककर बोले : 'इसको, बिचारी को कहीं अच्छा ठिकाना देखकर डाल दो, किसी भी जात का अच्छा आदमी मिल जाय तो ठीक है, तुम तो इतने जिले में घर घर से वाकिफ हो !'

'यही तो मुसीबत है मा'राज ! अगर कोई जिले में मिल जाता तो क्या चाहिये था ? एक तो राज्य का डर और फिर आपस में बैर बँधता है ! परजात का भी कौन घर में बिठाने को तैयार होगा !'

'ये अब तुम जानो मुखिया !' और झमझ के मुँह पर नजर पड़ने से फिर बढ़वाड़े : 'हमारे पास कहाँ ये इछत ले आये ?'

मुखिया बोले : 'ठिकाना तो मैं लगा दूँ मा'राज, अपनी तरफ के एक सेठ अमदावाद में रहते हैं उनके यहाँ हमारी तरफ का एक पटेल छप्पनिया काल के समय से रहता था। उसने वहीं शादी की और भगवान ने एक लड़का भी दिया। इस समय वह तो मर गया है, लेकिन वह लड़का तो—देखने में भी सुन्दर है और उमर में भी बड़ा है। कुछ दिनों पहले वे सेठ इधर आये थे तब मुझ से बात की थी कि कोई अच्छी लड़की मिले तो देखना, उसे जात-पात की भी कोई परवा नहीं है। लेकिन मा'राज...'

'तो फिर काये कू वो नहीं कर डालते ?' महाराज ने कहा।

'लेकिन वह भी समय आने पर होगा मा'राज ! इस समय मैं कैसे गाँव से बाहर निकल सकता हूँ ? लोगों को वहम न हो, तो भी होजाय। दो-चार दिन बाद जरा शांत होने पर देखूँगा।'

और आखिर महाराज को चार-पाँच दिन के लिये झमझ की रखवाली का भार सौंपकर मनोरदा खड़े हो गये। चबूतरा उतरने से पहले कुछ याद आया और महाराज के पास आकर बोले : 'लेकिन

माँराज, इस बात का किसी को पता न चले माँ-बाप ! अगर दो-चार साल बाद भी सरकार को मालूम हो गया कि भूमकू फलाने ठिकाने पर है तो—रखने वाले के तो बारह बज जायेंगे, लेकिन साथ में मेरी भी आ बनेगी ! मुझे डर सिर्फ इतना ही है कि कहीं धर्म करते धक्के न खाना पड़ें !'

महाराज कुछ हँसे और बोले : 'भरोसा नहीं था तो फिर इधर इस्कु ले आये कायकु ?' और फिर कहा : 'तुम खुद की जबान को कब्जे में रखोगे तो बहोत है।' इतने में महाराज की नज़र भूमकू के फटे कपड़ों पर पड़ी इसलिये बड़बड़ाये : 'बिचारी के कपड़े के भी क्या हाल हैं !'

'वह तो जब मैं आऊँगा तब उसकी माँ के पास से लेता आऊँगा।' कहकर मनोरदा ने भूमकू से दो-चार दिलासा के शब्द कहे और फिर सावधान रहने को कहकर पीठ फेरी।

चबूतरे की सीढ़ियाँ उतरते समय—मानों उनके हृदय की प्रतिध्वनि सुनाई दे रही हो इस तरह—आसपास बसने वाले भीलों के मुरगों की बाँगें सुनाई देती थीं : कुकरे...कूउ...

X

X

X

खानातलाशी लेकर वापिस आये हुए मोती ने माँ से कहा : 'कुछ नहीं; खोदा पहाड़ और निकली चुहिया ! माँ, तू जो कहती थी वह सब झूठा था !'

'अरे, जा जा ! तुम्हारी आँखों में धूल भोंक दी !' अम्बा ने कहा।

'तू भी क्या बात करती है ! मनोरदा को कोई ठग सकता है ? अनाज की कोठियाँ तो क्या, चारे के पूले भी तितरबितर कर डाले; पिछले दरवाजे पर मूला को भी खड़ा रखा था। बेचरिया की क्या इज्जत खराब की ! घर के कोने में बैठी हुई उसकी माँ को कितना डाँटा-फटकारा ! लेकिन घर में हो तब पता चले न ?'

'सच कहता है ?' माँ को कुछ संतोष हुआ।

लेकिन मोती कुछ चिढ़कर बोला : 'अर्रै क्या सच कहता है ? मनोर काका तो मुझ से ही बिगड़ उठा ! कहने लगा कि—तेरी माँ तो बैर में अँधी हो गई है; लेकिन तू भी बिलकुल बेवकूफ है ! वीरा काका से कहने लगा : जिन्दगी में आज पहलीबार परास्त होकर लौट रहा हूँ। यह तो—पेरी भी चुप और तेरी भी चुप—ऐसी बात है; नहीं तो कहीं बात उड़े और राजा को मालूम हो तो तुम और मैं दोनों फँस जायेंगे। किसी के घर की तलाशी लेना यह कोई हँसी-खेल नहीं है।' कहकर खटिया में लेटते हुए मोती ने कहा : 'अभी तो कल सुबह तुझ से लड़ने के लिये आनेवाले हैं।' इस अन्तिम वाक्य से अम्बा के मुँह पर संतोष और आनन्द के भाव तैरने लगे।

और सचमुच मनोरदा सवेरा होते ही आ पहुँचे। अम्बा को—स्वजन की तरह—उलहना देते हुए बोले : 'अब देखना, उस बात करनेवाले से फिर मत पूछना कि 'तूने सचमुच देखी थी या नहीं ?' यह तो हमें खुद ही सोचना चाहिए कि शायद उस बामन ने घर से निकाल भी दिया होगा, तो भी कोई अपने गाँव में क्या मुँह दिखाने आयेगा ?' और उठते-उठते कहा : 'मैंने उस बेचरिया को बराबर दबा दिया है; नहीं तो सरकार में रपोट कर देता तो 'निकाली बकरी और घुस गया ऊँट' जैसा हाल होता। इसलिये आज से कोई कुछ भी कहे लेकिन विश्वास मत करना। आजकल तो अपनी सगी आँखों देखा भी भूठ निकलता है, समझी !' और जाते-जाते इतना कहना तो न भूले कि—'यह तो मुझे तुम्हारी सूरत देखकर कहना पड़ा है। अरे, यह तो क्या, अभी तुम लोगों की गप्पें तो सुनना ! कोई कहेगा कि 'खलिहान में देखा था, और कोई कहेगा नदी के किनारे !' तुम कितनों का कहना सच मानोगी ?'

और अम्बा को भी लगा कि मनोरदा की बात बिलकुल ठीक है। फिर उसने बात करनेवाले के—'क्यों अम्बाभाभी, कल की बात का कुछ पता लगा या नहीं ?'—प्रश्न के उत्तर में न तो

सच्ची बात कही और न उसे झूठ बोलने के लिये उलहना दिया। सिर्फ इतना ही बोली :

‘मरने दे भैया, भाग आई होगी तो कहाँ छिपकर रहेगी ? और नहीं आई होगी तो—गईगुजरी और पार हुई—अपने को क्या मतलब ?’ और कुछ दिनों बाद जब वह अपने पीहर गई, उस समय भी लोगों के—‘बे’न, सुना है कि उस राँड को तो भगा दिया ! लेकिन पता नहीं कहाँ गई ? तुम्हारे गाँव में आई है ?’—इस समाचार और प्रश्न का भी ऐसा ही उत्तर दे आई कि : ‘चूल्हे में जाय, एकबार नहा डालने के बाद बारबार क्यों उसकी बात करना चाहिए ?’

चूँकि गाँव में भी कुछ कुछ बात फैल गई थी। किसी खेत के रखवाले ने कहा कि मैंने रात को एक औरत को किसी आदमी के साथ उत्तर दिशा में भागते देखा था; और दूसरे ने उसकी हाँ में हाँ मिलाई; लेकिन तीसरे दिन पनघट पर बात का अन्त आ गया : ‘कुछ भी नहीं है, बे’न ! न तो अम्बा काकी कुछ जानती हैं और न मनोर काका ने बेचर के घर की तलाशी ली है ! यह तो सब गप्पें हैं !’ गनीमत थी कि बात करने वाले का नाम हाथ नहीं लगा था; नहीं तो उस बेचारे की कोई बचपन की बात याद दिलाकर कहती : ‘वह लुच्चा तो बचपन से ही गपोड़ा है !’

चौथे दिन तो गाँव में ऐसा लगता था मानों भूमकू के आने की कोई अफवाह भी नहीं उड़ी थी !

और भले ही उस घटना को—दूसरी लाखों घटनाओं की तरह—सारी दुनिया भूल गई थी, लेकिन एक जन उसे न भूल सका—शायद आजीवन भूल भी नहीं सकेगा,—भूमकू की माँ। एकबार उसने भूमकू को नौ महीने तक अपने पेट में रखा था, लेकिन आज इतनी बड़ी दुनिया में भी भूमकू के लिये जगह नहीं थी। अगर माता का वश चलता तो वह फिर भूमकू को अपने उदर में छिपा लेती; लेकिन अब वे सब बातें वाहियात थीं। भूमकू की माँ के मुँह

में अन्न का एक कौर भी नहीं जाता था; लेकिन लड़के-बहू के डर से कुछ न कुछ खाना ही पड़ता था; वहमी लोगों के आगे बनावटी हँसना भी पड़ता था। इसतरह उसने दो दिन तो बिताये लेकिन तीसरा दिन बिताना कठिन हो गया। सारे दिन वह मनोरदा की—उनके घरवालों की—चौकी करती रही : ‘कब मनोरभाई अकले पड़े और उनसे भूमकू की खबर पूछूँ !’

आखिर दोपहर के बाद वह मौका मिल गया। जमना ने अच्छीतरह देखा था कि सवेरे ढोर निकलने से पहले ही मनोरदा का लड़का कल्लू कलेवा लेकर खेत पर चला गया था, और अभी-हाल दोपहर का खाना लेकर उनकी घरवाली भी खेत पर गई थी।

जमना मट्टे की हँडी लेकर बाहर निकली। गलियारे में यों ही एक-दो घर चकर लगाकर वह सीधी मनोरदा की चौपाल में आई। मानो चोरी करना चाहती हो इसतरह आसपास नजर घुमाकर, टूटी हुई रस्सी को साँधते हुए मनोरदा की ओर आगे बढ़ी।

मनोरदा ने उसकी ओर देखा। जमना हवा से मुँह से नीचे देखती रही। क्या बोलना, क्या पूछना—इसका विचार करने से पहले ही मनोरदा बोल उठे :

‘तुम मट्टा लेने आई हो, जमनाभाभी ! लेकिन कोई देनेवाला तो है नहीं—थोड़ी देर बाद आओ तो...’

मानो वाक्य पूरा होने की वाट देखकर ही खड़ी हो इसतरह जमना ने एकदम पूछा : ‘एँ मनोरलाला ! वह अभागनी है कहाँ ? उसका कोई पता-ठिकाना...?’

तिरस्कार के साथ मनोरदा ने कहा : ‘भाड़ में पड़ी है और कहाँ !’ और आँखें निकालकर बोले : ‘मै’रबानी करके तुम घर चली जाओ ! किसी को शक नहीं होगा तो भी...’

महान प्रयत्न करने पर भी—मागों दूसरे की आँखें हों इसतरह—जमना की आँखें डबडबाकर फरने लगीं। टूटेफूटे शब्दों में बोली :

‘इतना तो बतला दो मनोरलाला ! वह जिन्दा है या...!’ और बाकी शब्द सिसकियों में मिल गये।

मनोरदा के मुँह के भाव उस समय देखने लायक थे। खड़े होकर बोले : ‘यह तो नादान की दोस्ती और जी का जँजाल हुआ !’ और घर को किवाड़ खोलकर अन्दर जाने लगे।

जमना ने मट्टा लेने के लिये रसोईघर में जाते हुए मनोरदा से फिर पूछा : ‘एँ मनोरलाला ! वह...है तो जिन्दा न...?’

मनोरदा झुल्ला उठे : ‘एकबार कह तो दिया कि मर गई !’ और ग्लानि भरे स्वर में बोले : ‘पूछते हुए लाज भी नहीं आती ! कल-पुँही की खबर पूछने के लिये तुम्हारी जीभ कैसे उठती होगी !’ और रसोईघर में जाते हुए बोले : ‘अगर मुझ जैसी माँ होती तो कभी हा गला घोट दिया होता !’ और मट्टा लेकर बाहर निकले। हँडी में डालते हुए चौधार आँसू बहाती और सिसकियाँ भरती हुई जमना की ओर देखे बिना बोले : ‘अभी तुम जाओ; अगर पूछना हो तो प्राना दो दिन बाद।’ फिर स्वगत बोलते हो इसतरह बोले : ‘साली कहाँ से कुबुद्धि सूझी जो मैं इस झगड़े में पड़ा !’

‘लेकिन मुझे उसकी कोई खबर...’

मनोरदा आपे से बाहर हो गये : ‘कह तो दिया है कि अभी तूतक न निकाला हो तो निकाल देना; समझीं ?’ और फिर कुछ ताचारी के स्वर में बोले : ‘मै’रबानी करके बाहर निकल जाओ !’—और बर्तन रखने के लिये अन्दर जाते-जाते बोले : ‘लोग ठीक ही कहते हैं कि—बाप जैसा बेटा, और माँ जैसी बेटी ! मैं तो यही सोचता हूँ कि ऐसी कलंकिनी से लड़की कहने के लिये कैसे जबान कुलती होगी ?’

जमना बड़ी मुश्किल से चुप होकर बोली : ‘मनोरलाला, चाहे ऐसी हो फिर भी नौ महीने...पेट में रखा है...कैसे भूल जाऊँ ?’

‘इस की जगह अगर पत्थर रखा होता तो अच्छा था; कम से कम [मारे और तुम्हारे कपड़े धोने के काम तो आता !’ और किवाड़ बन्द

करने की तैयारी बतलाते हुए बोले : 'ठीक, चलो किवाड़ लगाने दो, कोई सुन लेगा तो मुझे...'

जमना ने मट्टे की हँडी उठाते समय फिर हिम्मत की : 'इतना तो बता दो, मनोरलाला ! है तो यहीं आसपास न ?'

'चूल्हे में गये मनोरलाला !' कहकर किवाड़ लगाना छोड़कर चौपाल में पड़ी हुई खटिया की ओर मुड़ गये। कह रहे थे : 'इसी तरह लड़या-लड़याकर तो लड़की को बिगाड़ा और कमी रही हो तो अधिक प्यार बतलाकर बेचारे बेचरिया के बच्चों को बिगाड़ दो, जिससे मन की हो जाये।' और रस्सी साँधने में मशगूल हो गये। फिर बाहर निकलती हुई जमना के कानों में आवाज़ आई : 'इतनी-इतनी फ़जैती होने पर भी माँ को लाज नहीं आती, फिर लड़के का तो कहना ही क्या ? और दूसरे टूटे-फूटे शब्द सुनाई न देने पर भी जमना समझ गई : 'कुछ भी करो, अखिर जात के कमीन जो ठहरे !'

जमना की दशा 'चोर की माँ कांठी में मुँह छुपाकर रोये'— ऐसी थी। नहीं तो भले ही वह भोली थी, सहनशील थी, फिर भी उस 'माँ जैसी बेटी' वाले आक्षेप के समय तो बिगड़ ही उठती। लेकिन इस समय तो वह विवश थी। चौपाल उतरने से पहले उसने एक लम्बी साँस भरकर रुदन को दवा दिया। आँखें पोंछकर मुँह को हँसता रखा और सिर झुकाकर गलियारा पार किया। घर की देहली में पैर रखते ही आँखें डबडबा आईं और मट्टे की हँडी रखते-रखते दिल भर आया। वह चक्की के पास बैठकर सिसकने लगी। बरमी जैसा एक ही डर सारे शरीर को बाँध रहा था : 'हरामज़ादे ने लड़की को न जाने कहाँ गायब कर दिया ! किसी को बेच दी होगी...!'

घर में कोई नहीं था इसलिये पेट भरकर रोई। रो लेने के बाद ढोर बाँधे, बहू के डर से थोड़ा खाया और चौपाल में अलाव के पास आकर बैठ गई। जब न रहा गया तब बेचर से बोली : 'भैया, तू मनोरकाका से पूछ तो देख !'

‘क्या पूछूँ ?’ बेचर के रुखे स्वर से ही ऐसा लगता था कि वह जानते हुए भी वाहियात प्रश्न कर रहा है।

जमना ने अचकाते-अचकाते कहा : ‘यही कि वह अभागन है कहाँ ? जिन्दा है या...’

‘मर गई होगी तो क्या बिगड़ जानेवाला है ?’ और माँ की ओर घूरने लगा।

माँ बलपूर्वक हृदय में सांस खींचकर बोली : ‘मर गई होती तो फिर चाहिये क्या था ? लेकिन तू ज़रा पूछ तो सही !’

‘यह तू क्या समझकर बोलती है, माँ ?’ और आँखें निकालकर बोला : ‘मैं क्या मुँह लेकर पूछने जाऊँ ?’

माँ दुःखी होकर रुदनभरे स्वर में बोली : ‘हाय राम ! तू ऐसा क्यों बोलता है बेचरिया ? ज़रा विचार तो कर, कुछ भी हो, आखिर है तो तेरी सगी बे’न ! जब तू ही...’

बेचर बिगड़ उठा : ‘बे’न ? कैसी बे’न ? जब थी तब थी। तुझे खबर न हो तो सुन लेना कि आज से मेरा और उसका कोई नाता नहीं है !’

माँ नाक साफ करती हुई बोली : ‘भाड़ में जाये नाता ! नाता न रखना हो तो न सही, लेकिन इतना तो पूछ ले कि...’ वह रोने लगी।

बेचर का धैर्य टूट गया; वह चिल्ला उठा : ‘पूछ आ तुझे गरज हो तो ! ओ हो, बे’न ने बड़ा सत्कर्म किया है जो पूछने जाऊँ !’ और माँ की ओर तिरस्कार से हाथ लम्बाकर घृणा के साथ बोला : ‘अगर तुझे जरा भी लाज-शरम हो तो फिर कभी उसका नाम मत लेना !’

‘क्यों कहीं लूँगी ? जरूर लूँगी ! चाहे जैसी हो फिर भी वह मेरी बिटिया है और मैं उसकी...’

बेचर की रग-रग में मानों ज़हर फैल गया। वह दौल पीसकर बोला : ‘इतना गुस्सा आता है कि माँ-बेटी दोनों को...लेकिन क्या

करूँ...! ज़रा विचार आता है !'

'तेरे जानें तो मर ही गई है; लेकिन न जाने बेचारी कहाँ... किसके यहाँ...'

माता के विलाप से बेचर और भी भड़क उठा। उसका शरीर कुछ कुछ काँप रहा था। दाँत पीसकर कुछ देर बाद बोला : 'सामने से चली जा, कहीं जाकर डूब मर जिससे जी को शांति तो मिले !' कुछ रुककर बोला : 'सच पूछ तो तूने ही उसको बिगाड़ा था। मैं हमेशा कहता था कि माँ, तू रहने दे, अपने को रोज के दो आने नहीं चाहिए ! लेकिन तू माने तब न ? मैं जानता था कि तू मेरे मुँह पर कालिख पुतवायेगी !' फिर साँस लेने के लिये रुका और माँ की ओर झुककर बोला : 'तुझे तो यहाँ घर में बैठा रहना है, इसलिये बिटिया को सिर पर चढ़ाना पुसा सकता है, लेकिन मुझे तो पाँच पंचों में बैठना पड़ता है। जो बाहर घूमता-फिरता है उसी का मन जानता है कि लोगों में कैसी-कैसी बातें होती हैं, और उँगली उठाते हैं !'

'तुझ में सुनाने की हिम्मत नहीं है, इसलिये उठायेंगे ही ! कौन है वह दूध का धोया, राजा का बेटा...'

'सब चमार हैं ! लेकिन उससे मुझे क्या ?' फिर तनकर बोला : 'तुझे खबर है ? अभी तक पंचों में बेचर की चलती थी, लोग उसकी बात मानते थे, ज़रा-सी बात हो तो पंच पूछने आते थे, लेकिन...' दाँत पीसकर माँ की ओर हाथ लम्बाकर आग उगलने लगा : 'लेकिन तेरी लाइली ने और तो ठीक, मुझे मुँह दिखाने जैसा नहीं रखा !' और पाव-पावभर के गटे इधर-उधर घुमाकर दिल की आग बुझाने लगा : 'तू बिटिया बिटिया क्या करती है ! उसने तो मेरी सात-सात पैरी की मुखियाई...' और गुस्से में बात पलटी : 'हाय हाय ! क्या करूँ...!' फिर कुछ टंडा होकर स्वगत बोला : 'हँ ! अगर मैं उस बैरन की खबर लेने जाऊँ तो धिक्कार है मेरे जीवन को !'

जमना के आँसू कुछ सूख गये थे। आवाज़ भी साफ हो गई थी। वह बोली : 'क्यों अपने को धिक्कारता है बेटा ? जब नाता ही तोड़ दिया, तब तुझे क्या ? भले ही लोग उसे किसी पठान को बेच दें या...'

बेचर मानों एकदम तंग आ गया हो इसतरह बोला : 'माँ, क्यों मेरे पीछे पड़ी है ? अगर दो-चार बरस जीने देना हो तो जीने दे...'

'जियो बेटा, दूधों नहाओ पूतों फलो !' माता की आवाज़ में गुस्सा और कड़वाहट थी; उसी में कुछ कठोरता और व्यंग भी आ गया : 'जियो बेटा, सुख से जियो ! अभी भी अगर कुछ अड़-चन हो तो मैं भी अपना रास्ता ढूँढ़ लूँगी। फिर...'

'माँ...तू मुझे किसलिये जला रही है ? तेरे पैरों पड़ता हूँ, तू उठ जा यहाँ से ! मैं कल पूछ आऊँगा, लेकिन अभी जा...हाथ जोड़कर कहता हूँ...किसलिये मेरे पीछे...'

'कल क्यों परसों जाना !' और तिरछी आँखों से आँगारे बिखे-रती हुई बोली : 'तू तो जरूर पूछने जायेगा ! तेरी शकल ही कहती है !' और खड़ी होकर बोली : 'मैं ही जाती हूँ; देखती हूँ आज वह कैसे जवाब नहीं देता !'

माँ के शब्दों की अपेक्षा उसकी सूरत देखकर बेचर अधिक घबरा गया। वह खड़ा होकर बोला : 'तू किसलिये उतावल करती है माँ ? मैं जरूर पूछ आऊँगा।'

माँ कुछ अचककर बोली : 'फिर कब ? जब कहीं ठिकाने लग जायेगी तब ?' और पैर उठाया। बेचर ने सामने आकर रास्ता रोक लिया और बेचैनी से बोला : 'यह कोई पूछने की बेला है माँ ?' और ध्यान न देती हुई माँ को डग भरते देखकर बोला : 'ठीक कहता हूँ माँ ! मैं घर में आग लगाकर चला जाऊँगा, हाँ ! मुझे अधिक तंग मत कर, समझी ?'

उसी समय धड़ से घर के किवाड़ खुलने की आवाज़ आई। शायद बेचर की घरवाली यह सब सुन रही होगी; वह दोनों के

आगे खड़ी होकर बोली : 'किसलिये अपने हाथों अपनी हँसी कराते हो ?' और सास का हाथ पकड़कर खींचती हुई बोली : 'बिटिया ने तो धुजा फर्राई है, और उसी पर डोल पीटने जाती हो ! ओहो हो ! बिटिया के पीछे तो मानों सूरज ही नहीं निकलेगा ! चलो, सो जाओ चुपचाप...' और घर के किवाड़ बन्द कर दिये । माँ-माँ करते हुए बच्चे को अच्छीतरह पीटकर खटिया में पड़ी हुई सास को सुनाने के लिये—या फिर यों ही—बोली : 'लाड़ करनेवाले और होंगे; मैं तो चीरकर दो कर दूँगी, हाँ...'

लेकिन इससमय जमना का ध्यान बहुत के बोलने या बच्चे के रोने की ओर नहीं था; था धरती के किसी अगोचर कोने में आँसू बहाती हुई बिटिया को देखने में ! आँखों से बहती हुई धाराओं का भी शायद ध्यान नहीं होगा । उसके अधीर हृदय में एक ही आकांक्षा थी : कब सवेरा हो और मुखिया से मिलूँ । फिर मन ही मन लोंगों की परवाह किये बिना, उड़ाऊ जवाब देनेवाले मनोरदा को लानत-मलामत करती रही !

×

×

×

सवेरा हुआ और जमना मुखिया के घर भी पहुँची । लेकिन वे घर नहीं थे । उनकी घरवाली ने कहा :

'जमना भाभी, वे तो कल शाम से थाने में गये हैं।' जमना के पैर वहीं जम गये; उसकी शक्ति नष्ट होने लगी । उसने पूछा : 'वापिस कब आयेंगे ?'

मुखिया की घरवाली ने हुलास की डिब्बी जमना के आगे रखते हुए जवाब दिया : 'कौन जाने भाभी, कहते थे कि शायद दीवान सा'ब के पास भी जाना पड़े—मदरसे की अरजी की है उसी का झगड़ा लगा है ! लो, बैठो तो सही !'

'नहीं, अब तो जाऊँगी ।' जमना मुश्किल से कह सकी; लेकिन पैर उठाते हुए फिर से पूछा : 'कबतक लौटेंगे ?'

‘क्या बतलाऊँ भाभी ! दो दिन में भी आ जायें, और न आये तो पाँच दिन भी लग जायें; सरकारी काम का कोई ठिकाना होता है !’

जानते हुए भी जमना ने पूछा : ‘अकेले ही गये हैं, या गाँव का कोई दूसरा भी है ?’

‘क्या कहती हो !’ मुखिया की घरवाली मुँह चढ़ाकर हुए बीच में हुलास का सड़ाका लेती हुई बोली : ‘कल ही चौपाल में गाँव के आठ-दस आदमी बैठे थे; उस समय उन्होंने बहुत कुछ कहा कि—अरे भैया, एकाग्र तो साथ चलो ! लेकिन सब चुप्पी साध गये । वीरा भाई से तो बहुत कुछ कहा, लेकिन टस से मस नहीं हुए । घर का काम छोड़कर कौन जाने को बैठा है ? हम तो मुखिया ठहरे इसलिये भूख मारकर जाना ही पड़ता है ।’ फिर हुलास का सड़ाका मारकर बोली : ‘दो-चार दिन से तो उनकी तबियत भी ठीक नहीं है और अकेले गये हैं—इतनी गनीमत है कि रास्ते में उस सिपाही का संग है, इसलिये...’

जमना का धैर्य टूट गया था । बीच में बोली : ‘भगवान सब अच्छा करेगा !’ फिर कुछ रुककर कहा : ‘ठीक, बैठो, मैं जाती हूँ ।’ और पीठ फेर ली ।

×

×

×

माँ को चौपाल में घुसता देखकर बेचर ने पूछा : ‘क्या कहा, माँ ?’

‘घर है ही कहाँ ?’ जमना मुश्किल से बोल सकी ।

‘अरे हाँ, वे तो थाने गये होंगे ! मुझे भी साथ...’

देहली को पार करती हुई जमना का गला भर आया : ‘तेरा बाप थाने नहीं गया, वह तो गया...’ उसके मुँह से एक सिसकी निकल गई और चक्की के पास बैठकर रोने लगी । अब बिटिया के सुख-दुःख भी जानने को नहीं मिलेंगे; सुख-दुःख तो ठीक, लेकिन उसके जीने-मरने की भी नहीं सुन पाऊँगी । ऐसे ऐसे अनेक प्रश्नों से घुँटता हुआ उसका हृदय रुका तो नहीं, लेकिन हरएक धड़कन पर मानों

बोल रहा था : 'गई...जरूर किसी अजाने देश में भेज दिया !' और वह धरती पर लुढ़क गई ।

माँ को धरती पर पड़े-पड़े मुँह छिपाकर रोता देखकर बेचर दर-वाज़े से ही लौट गया । ऊबकर बोला : 'मैं तो कहता हूँ कि तू भी मर जा इसलिये झगड़ा मिटे ! दो-चार दिन के लिये जात से बाहर पड़ा रहूँगा तो क्या बिगड़ जाने वाला है ? क्यों सब मिलकर मेरा जी खा रहे हो !'

और रो-रो कर थकी हुई जमना को—शायद जीना था इसीलिये—विचार आया : 'शायद थाने ही गये होंगे !' साफ-साफ इन्कार करते हुए दिल को मानों ठग रही हो इसतरह भेदी चमत्कार की आशा के साथ अभी से थाने के रास्ते पर उसकी आँखें बिड़ गईं । किसी के बाज़ार से आने के समाचार मिलते तो उसने पूछती भी : 'क्यों भैया, मनोरलाला मिले थे ?'

लेकिन वह आदमी भी कहाँ से देखनेवाला था ? मनोरदा तो कल शाम को ही गाँव की सीमा पार करके दाहिनी ओर मुड़ गये थे । रास्ता कुछ लम्बा जरूर निकला, लेकिन विचारों की धुन में अधिक लम्बा मालूम नहीं हुआ । रात को करीब नौ बजे वे महाराज की धूनी के पास जाकर खड़े हो गये ।

'कौन हैं रे ? ओ...हो ! मनोर मुक्किया ?' और दरवाज़े की ओर सिर मोड़कर आवाज़ दी :

'अरी पगली ! कहाँ गई ? सुनती है या नहीं ?' और आँधरे में किसीकी परछाई—सी नजर आते ही बोले :

'ये मनोर काफ़ा आया छे, अरे बहार तो आ !' महाराज झमकू के साथ बात करते समय 'है' को 'छे' कहकर गुजराती में बोलने की कोशिश करते थे । उन्होंने मनोरदा से कहा : 'रात को भी बाहर नहीं निकलती; बड़ी मुश्किल से थोड़ी देर बिठाता हूँ !'

झमकू देहली में ही खड़ी रही । महाराज अधिक कुछ कहे उससे पहले ही मनोरदा बोले : 'भले वहीं खड़ी, मा'राज !' और बगल

से कम्रल का एक छोर निकालकर उकेलते हुए भूमकू से बोले : 'ले यह कपड़े, तेरी माँ ने भेजे हैं।'

भूमकू ने साड़ी, लहंगा और पोलके को धूनी के धुँधले प्रकाश में एक-दो बार उलट-पुलटकर देखा इसलिये, या फिर उसके मुँह की उलझनभरी रेखाएँ परखने जितना प्रकाश न होने से,—कुछ भी हो, लेकिन महाराज ने कहा : 'इसमें क्या देखती छे ? तेरी माँ ने ही तो भेजे छे,' और हँपते-हँसते : 'पहले तेरे नहीं होंगे लेकिन अब तो तेरे हो छे ना ?' कहकर मनोरदा से हाँ कहलाने के लिये बोले : 'क्यूँ मनोरदा ?'

यकायक मानो किसी स्वप्न में से जाग रहे हों इसतरह मनोरदा ने हकलाते हुए कहा : 'एँ ? हाँ हाँ, इसी के तो हैं।' कहकर जोर से एक साँस ली।

लेकिन भूमकू इतना तो जानती ही थी कि—दूसरे किसी के भी हों, लेकिन उसके या उसकी माँ के तो नहीं हैं। उसने निकलती हुई हायसाँस को भी कपड़ों में लपेट लिया और मुँह फिराकर अँधेरे में अदृश्य हो गई।

महाराज के मुँह से भी एक गहरी साँस निकल गई।

न जाने क्यों मनोरदा को एकदम तम्बाकू याद आ गई और भरने लगे। उनके मुँह पर उलझे हुए भावों को सुलझाना कठिन था। अगर महाराज विचारमग्न न होते तो वे भी यह देखकर—शायद न भी पूछते लेकिन—विचार में तों पड़ ही जाते।

थोड़ी देर बाद महाराज फिर बोले : 'बड़ी नरम लड़की है !' इतना कहकर मनोरदा की दी हुई चिलम मुँह से लगा ली, और जिसतरह कोई आराम लेता हुआ रेलगाड़ी का इंजिन थोड़ा-थोड़ा धुआँ निकालता रहता है इसतरह पीते रहे। फिर मनोरदा के साथ चर्चा करने लगं कि वे कब और कहाँ जानेवाले हैं। भूमकू के लिये कुछ सिफारिश की और उपदेश भी दिया।

भूमकू ने दो-चार दिन के सहवास से महाराज में भरे हुए सर्वव्यापी स्नेह को लगभग अपनी ओर खींच लिया था। परभव का ऋणानुबंध मानकर महाराज को भी उसके लिये पुत्री जितनी, बल्कि उससे भी अधिक चिन्ता होने लगी थी।

भूमकू की निराधार दशा ने भगवान से दँधे हुए उनके तार को ज़रा ढीला कर दिया था। अच्छी या बुरी प्रत्येक स्थिति का प्रभु की इच्छा में समावेश कर देनेवाले महाराज को प्रभु की यह क्रूर इच्छा सालती थी और वह सारा गुस्सा मन ही मन समाज पर उतारते थे। अन्त में प्रभु से ही प्रार्थना करने लगते थे: 'समस्त में नहीं आता भगवान, कि यह समाज कितना बड़ा राक्षस है! इन्सान उससे डरते हैं, और अपने हाथ से अपने बच्चों का भोग लगाते हैं, मगर क्या तू भी उससे डरता है?' — ऐसे ऐसे अनेक विचार आते थे।

महाराज ने मुखिया को चिलम देते हुए कहा: 'तुम सो जाओ, मुखिया! मैं पहला मुरगा बोलते ही जगा दूँगा।' और फिर खुद भी लेट गये। आँखें मींचने पर भी उनका दिल बेचैन था। हो सकता है कि इतने वर्षों बाद भी उनका हृदय वसुंधरा का कोई कोना ढूँढ़ रहा हो, किसी गर्म गोद को, जीवन-रस भरती किन्हीं आँखों को याद कर रहा हो।

भूमकू कम्यल लपेटे महादेव की बगल में पड़ी थी। शायद उसे भी इस बात की खबर नहीं होगी कि वह जागती है या सोती; लेकिन अभीरता तो जाग ही रही थी: अभीहाल मुरगा बोलेगा, अभीहाल उठकर चलना पड़ेगा! और मानो उसके कानों में आवाज आ रही थी: 'कुकरे कूउउ...' भूमकू एकदम जागकर बैठ गई। फिर से आवाज सुनने के लिये कान लगाकर बैठी रही। कुछ सुनाई न देने पर धड़कता हुआ दिल कुछ शांत हुआ।

फिर मानो—दूर-दूर से किसी व्यक्ति को आते—रास्ता चलते देख रही हो इसतरह मुरगे की आवाज़ का भास होता था: 'वह

बोला...' और फिर तो सचमुच मुरगे की बाँगें सुनाई देने लगीं—पहली, दूसरी और तीसरी—इसतरह आवाज़ें भी गिनीं। भले ही भूमकू कुछ न बोली; लेकिन जोर से आने-जाने वाली साँस में इतना तो ज़रूर छिपा था—मुरगे से मानो कह रही थी: 'हट हरामजादे! बोला तो भले बोला, लेकिन थोड़ी देर बाद बोलना था न!' मृत्युघंट जैसी मुरगे की बाँग ने भूमकू को निराश, शक्तिहीन बना दिया।

महाराज के पहले ही मनोरदा जाग उठे और जल्दी से भूमकू को भी जगा आये। बाहर निकलते हुए बोले: 'जरा जल्दी कर; मुँह धोना हो तो धोकर तैयार हो जा। चल जल्दी; कपड़े न बदले हों तो कोई बात नहीं, रास्ते में तो पुराने ही चलेंगे।' और जहाँ सोये थे वहाँ से एक पहिने के कपड़ों की छोटी-सी पोटली उठाकर अन्दर देते हुए बोले: 'इसे भी बाँध लेना; चल, जल्दी कर! जरा ठहर, मैं दीया जला लूँ।' धूनी में से एक लकड़ी उठाकर दीया जलाया और भूमकू को दे दिया।

महाराज भी जागकर तख्त पर बैठ गये थे। मनोरदा की भरी हुई चिलम का दम लगाते हुए दरवाज़े में खड़ी भूमकू की ओर देखकर बोले: 'अरे, तूने कपड़े नहीं बदले? ऐसे कपड़े पहिनकर रास्ते में कैसे जायेगी! जा, बदल ले!'

मनोरदा कुछ बोलना चाहते थे, लेकिन इतने में भूमकू को अन्दर जाता देखकर चुप हो गये।

कुछ देर बाद भूमकू कपड़े बदलकर आ पहुँची।

मनोरदा की नजर उस पर पड़ी, लेकिन मानो देखा अनदेखा कर रहे हों इसतरह लकड़ी लेकर खड़े हो गये। बोले: 'अब चलो मा'राज!'

दुनिया में ऐसे भी स्नेह होते हैं जिनके लिये न तो समय के जल की और न किसी सम्बन्ध की आवश्यकता होती है; उन्हें धरती की फलद्रुप्ता और जलवायु की भी परवाह नहीं होती;

चाहे जब, चाहे जहाँ फूट निकलते हैं और क्षणभर में वृक्ष का रूप धारण कर लेते हैं। भूमकू के सम्बन्ध में महाराज को ऐसा ही हुआ था। दुनिया की माया से अलिप्त रहने के लिये जंगल में वास करने वाले उन वैरागी के हृदय में माया के अंकुर फूटते ही वे सलबला उठे। उन्होंने आँसू बहाती हुई भूमकू को हृदय से लगाया, और उसके सिर पर हाथ फेरने लगे। संसार से विरक्त उन आँखों के खिरते हुए दो-चार आँसुओं को सिर पर चढ़ाकर भूमकू सिसकियाँ भरने लगी। बाहर से वह दृश्य ऐसा मालूम होता था मानो शकुन्तला अपने पालक-पिता कण्व से विदा हो रही हो; लेकिन भीतर से देखने में बहुत अन्तर था। शकुन्तला को तो अपने हिरनों से, अपनी लताओं से और सखीवृन्दों से पुनः मिलने की आशा थी, सुविधा भी थी, और इसलिये कुछ संतोष भी होगा; लेकिन भूमकू के लिये तो इनमें से कुछ भी नहीं था। गाँव की सखियों ने तो एक प्रकार से उसका तिरस्कार किया ही था और भविष्य में मिलने की, मनाने की कोई आशा भी नहीं थी। जब वह घास लेने आती तब इन वृक्षों पर चढ़ती थी, खेल-कूद करती थी; और कभी-कभी सखियों के साथ यहाँ गाती भी थी। उस वन और घर को वह सदा के लिये छोड़ रही थी। अब तो इस देश में माँकना भी उसके लिये अशक्य था—उसका स्थान यहाँ से सदा के लिये छिन रहा था।

फिर आसपास के तितर-बितर छप्परों पर से मुरगों ने बाँग दी। कुछ दूरी पर खड़े हुए मनोरदा ने फिर कहा :

‘मा’राज, अब आशीर्वाद दो; हम चलें।’

भूमकू को छोड़ते हुए महाराज बोले : ‘मैं क्या आशीर्वाद दूँ मुखिया ? यह खुद ही आशीर्वादरूप है। यह आँसू ऐसी जगह से बह रहे हैं कि यह खुद ही—आँसू ही—अपनी मुसीबतों को धो देंगे !’ कुछ रुककर बोले : ‘और अगर न धो सके तो...’ आगे न बोल सकने से—या फिर बोलना योग्य न लगने से—वे चुप हो गये।

मनोरदा क्या समझे यह तो कौन जाने, लेकिन डग भरने से पहले बोले : 'सच है, मा'राज !' और हाथ लम्बाकर : 'अच्छा, नमोनारा'न मा'राज !' कहकर चलने लगे ।

महाराज भूमकू को कुछ धकेलते हुए मुश्किल से बोल सके : 'जा, बेटी ! भगवान पर भरोसा रखना—वही सम्हालेगा !'

'मेरी माँ से...'

भूमकू आगे न बोल सकी; उसने पीठ फेर ली । महाराज ने कहा : 'अच्छा अच्छा, तू जा, वो तो मैं उसे समझा दूँगा; स...ब बात करूँगा ।' फिर मनोरदा से कुछ सिफारिश करके भूमकू को भी सीख दी : 'बेटी ! परदेस में जाकर ऐसा कुछ मत करना जिससे लोग तमासा देखें । तेरे को क्या फिकर ? तेरे बाप जैसा मनोरदाका साथ में छे; वह खुद ही तेरा अच्छीतरह ठिकाना कर देगा, जा ! भगवान तेरा भला करे !'

देर हो जाने का कोई डर न होने पर भी न जाने मनोरदा को क्यों अकुलाहट हो रही थी ! मौका मिलते ही उन्होंने महाराज को फिर से प्रणाम करके चलना शुरू किया । भूमकू भी पीछे-पीछे चलने लगी ।

जबतक वे लोग भाड़ी में आंभल न हो गये तबतक महाराज खड़े-खड़े उनकी पीठ देखते रहे । फिर एक लम्बी साँस भरकर बोले : 'कुछ समझ में नहीं आता ! तुदरत की हर चीज में कुछ न कुछ गोलमाल है !' और पीठ फेरते ही मानो वह भगवे रँग का चोगा उतारकर भोग लगा रहे हों इततरह मुँह पर आनंद की मधुर रेखाएँ बनाकर बोले : 'इसीलिये तो इसमें इतना मजा है ।' लेकिन फिर कहीं से भूमकू की याद आ गई और हृदय की कोर खींचकर हायसाँस भराती हुई चली गई ।

और जंगल पार करती हुई, घर छोड़ती हुई भूमकू की हाय-साँसों का तो कोई पार ही न था । कुछ ही देर पहले उगा हुआ पिछली रात के चाँद का टुकड़ा पीछे से धुंधला प्रकाश फेंक रहा

था, लेकिन भूमकू का मार्ग तो उसकी अपनी ही परछाईं से अंध-कारमय था। चूँकि भूमकू के जीवन का भावी पथ तो इससे भी अधिक अंधकारमय था, लेकिन इस समय उसे उसकी कोई चिन्ता नहीं थी। आँखों से बहनेवाली आँसू की धाराओं का भी उसे भान नहीं था; भान था सिर्फ एक बात का : वह पग-पग पर अपने वतन से दूर जा रही थी—विलग हो रही थी। सुख-दुःख की डुब-कियाँ खाते हुए जीवन में जिस बात का उसे कभी ख्याल भी न आता उसका अनुभव इस समय हो रहा था। हरएक वृत्त, जंगल की छोटी-बड़ी पगडंडियाँ और सारा प्रदेश अभी तक तो उसी का था; लेकिन अब वह देखने को नहीं मिलेगा ! मातृभूमि के स्नेह का सच्चा अनुभव तो उसी को होता है जिसने उसे छोड़ दिया हो—सदा के लिये छोड़ना पड़ रहा हो। आँसुओं से मूल्य चुकाती हुई भूमकू गंभीर मुखमुद्रा में खड़े हुए वृत्तों से आँख-मुँह के भावों द्वारा ही मानो कह रही थी—प्रार्थना कर रही थी : ‘अगर मेरी माँ किसी दिन इधर आये तो कह देना कि—भूमकू को हमने देखा था—वह इसी रास्ते से गई है ! ..’

×

×

×

करीब छह कोस का मार्ग तय करके दोनों जनें नदी किनारे आकर अंत लेने बैठे। मनोरदा ने मार्गस निकालकर चिलम सुल-गाई। उससे कुछ ही दूर एक पत्थर पर पैर मोड़े हुए, एक हाथ टेककर और दूसरे हाथ में ली हुई टहनी से पत्थर पर लकीरें खींचती हुई भूमकू बैठी थी। उसकी आँखों और मुँह पर विषाद के बादल छा रहे थे। मनोरदा चिलम का सड़ाका खींचते हुए उसकी ओर ताक रहे थे। कुछ देर बाद बोले :

‘देख बिटिया, मैं साथ तो आ रहा हूँ, लेकिन परदेस में मेरी फजैती मत कराना ! ऐसा कुछ हो तो पहले से ही कह देना; कहीं ऐसा न हो कि मुझे धरम करते धक्के खाना पड़ें !’

‘माँ कुछ कहती थी, मनोरकाका ?’ भूमकू ने सिर उठाये बिना ही पूछा।

‘और तो वह बेचारी क्या कहती ! कहने लगी : ‘तुम किसी भी तरह इसका रास्ता निकालो, नहीं तो बिटिया के साथ हमारी भी फजैती होगी ! ऐसा कहकर खूब रोई ! जब मैंने सेठ के घर रहनेवाले अपने गाँव के एक पटेल के लड़के की बात चलाई तो बेचारी खुशी से फूल गई !’

‘एकबार मुझ से...मिलने भी न आई...!’ कहते ही भूमकू की आँखों से आँसू की धाराएँ बह चलीं।

‘अरी पगली ! वह तो आने के लिये ललक रही थी; लेकिन आये कैसे ? अगर कोई जान ले तो तुम लोगों पर आफत ही आ जाये न !’ फिर चिलम का दम खींचकर बोले : ‘और यह तो अभी नया-नया किस्सा है तबतक नहीं मिल सकती; लेकिन एकाध साल बाद जब मामला ठंडा पड़ जायेगा उससमय खड़ी-खड़ी आकर मिल जाये तो भी कौन जाननेवाला है ? हमारी जात की मोंघी बुड्डी डाकोरजी जाने के बहाने बिटिया से मिल ही आती है !’ और चिलम उँडेलकर, साफ़ी खोंसते हुए बोले : ‘यह तो मैं सारा इन्तजाम कर दूँगा। चल उठ, मोटर की बेरा हो गई ।’ और दोनों आगे बढ़े।

फिर भूमकू कुछ न बोली। दूसरा मौक़ा होता तो जीवन में पहली ही बार मोटर में बैठने की खुशी में वह भले ही नाचने-कूदने न लग जाती, लेकिन उसका हृदय तो ज़रूर नाच उठता और छोटी-सी आँखों में आनंद छा जाता। जीभ से सरस्वती बहने लगती : ‘ओ हो हो ! कितनी दौड़ती है ! कितना मज़ा आता है ! मानो ऊपर उड़ रहे हैं ! देखीं वे पहाड़ियाँ ! वह दिख रहा है अपने गाँव का पहाड़ ! कितना छोटा-सा है !’ और ऐसी-ऐसी तो हजारों बातें करती; लेकिन इस समय तो वह सिर बाहर निकालकर उन पहाड़ों की चोटियाँ देख रही थी, जो मानो सिर उठाकर उसे देख रहे हों। मोटर की दिशा बदल जाने से हो या फासला बढ़ जाने

से—यह तो कमकू न जान सकी—लेकिन वे पहाड़ भी दृष्टि से ओझल हो गये। इधर-उधर देखते-देखते कमकू थक गई थी। आँखों से दो-चार आँसू गिरे जो उड़ती हुई धूल में मिलकर अधर ही रह गये।

×

×

×

ढलते दोपहर के समय मोटर ने एक स्टेशन पर लाकर उतार दिया।

‘चल उस पीपल के नीचे।’ कहकर मनोरदा आगे हो लिये।

दोनों जनें बैठ गये। कभी कमकू की नजर कुछ दूरी पर खड़े मालगाड़ी के डिब्बों की तरफ जाती थी, और कभी प्लेटफार्म पर लगे हुए माल के ढेरों पर पड़ती थी; कभी मोटरों और बैलगाड़ियों पर जाती था तो कभी सामनेवाली दिशा में फैली हुई रेल की पटरियों पर इसतरह चिपक जाती थी मानों उनकी जड़ें और छोर ढूँढ़ती हो। मनोरदा ने कुछ बीड़ियाँ और माचिस खरीदकर एक बीड़ी सुलगाई, और मजे-से पीकर ठूँठ को पैर से कुचलते हुए बोले : ‘उठ बिटिया, चल थोड़ा-सा खा लें !’

‘भूख नहीं है काका, तुम खा लो !’ कहकर कमकू पोटली खोलने लगी।

‘अरे, वह कसार का लड्डू—मेरी धोती में बँधा है; चल एक-एक टुकड़ा...’

‘लेकिन मुझे बिलकुल भूख ही नहीं है, काका ! खाना होता तो यह मिर्च-मसाले वाली रोटी भी है।’ और मनोरदा के आगे खोलती हुई बोली : ‘लो, काका, इसमें कोई छूत नहीं लगेगी, यह तो दूध में आटा गूँधकर बनाई है।’

‘और दूध में नहीं गूँधा हो तो भी यहाँ परदेस में क्या बिगड़ जाने वाला है ? लेकिन तू थोड़ा-सा लड्डू तो खा; बेचारी तेरी माँ ने कितने प्यार से...’

‘सच कहते हो काका ? मेरी माँ ने रख दिया है ? तुमने तो मुझ से बात तक न की !’ कमकू का चहरा अचानक के लिये खिल उठा।

‘इस में क्या कहना था, पगली!’ कहकर मनोरदा ने भूमकू के बगल में पड़ी हुई लुटिया लेंते हुए बात बदली: ‘मैं जरा पानी ले आऊँ...’

‘नहीं काका, तुम खाओ, पानी मैं लिए आती हूँ।’ और मनोरदा के इन्कार करने पर भी लुटिया लेकर चल दी।

भूमकू नल के पास जाकर खड़ी हो गई और किसी विचित्र दृष्टि तथा अपूर्व आनंद के साथ नल की ओर ताकने लगी। खोलने और बन्द करने की कला सीखकर नल खाजी होये ही पानी भरने लगी। टोंटी दबाकर पानी भरने में बड़ा मज़ा आ रहा हो इसतरह भूमकू ने लुटिया भरकर साफ करने के बहाने पानी उँडेल दिया। फिर से भरा और आसपास देखकर फिर उँडेल दिया। तीसरी बार भी ऐसा ही किया, लेकिन चौथी बार उँडेलने का साहस न कर सकी। एक मुसाफिर को नल की ओर आता देखकर झटपट लुटिया भरकर चल दी और मनोरदा को पिलाकर फिर से भर लाई। बहुत आग्रह करके मनोरदा ने उसे खाने के लिये बैठाया।

इतने में भूमकू के कानों में दूर-दूर से आती हुई गाड़ी की सीटी सुनाई दी और पूछा: ‘यह कौन बोला, काका? रेलगाड़ी बोली!’ भूमकू की आँखें उसी ओर मँडराने लगीं। हाथी जैसी काली काया को तेज़ी से दौड़ता देखकर और भीतर प्लेटफार्म के मुसाफिरों में खलबली और शोर-गुल सुनकर खाने की पोटली बाँधते हुए बोल उठी: ‘उठो काका, गाड़ी आ गई! जल्दी...’

‘अरी पगली, खा तो लेने दे, यह तो दूसरी गाड़ी है। अपनी गाड़ी को तो अभी बहुत देर है। वह तो इधर से आयगी।’ आराम से बैठे हुए मनोरदा ने लड्डू का एक टुकड़ा मुँह में डालते हुए कहा।

प्लेटफार्म में दाखिल होते ही गाड़ी ने एक और सीटी दी। भूमकू के शरीर में कँपकँपी फैल गई और घबराई हुई नजर से गाड़ी के इन्जिन और बड़े-बड़े डिब्बों को देखती रही। मुसाफिरों की भागदौड़ भी कम नहीं थी। कोई बच्चे का खींचता था, तो कोई बच्चे के बाप

को बुलाता था; कोई गाड़ी में जगह पर कब्जा करके चिल्लाता था : 'इधर आओ इधर...' 'मैं तो यहाँ हूँ !' और इससे भी अधिक गड़बड़ी और धमाल तो उतरनेवालों की थी। कोई पेटी संभालता था, तो कोई स्टेशन के बाहर खड़ी हुई मोटर भर जाने के डर से घरवाली के सिरपर एक के ऊपर दूसरा सामान लाद रहा था। भूमकू ने तो औरत-मर्द जैसे दिखाई देने वाले दो जनों को लड़ते भी देखा। इधर मोटर के पास भी धक्का-मुक्की और धोलाचाली हाँ रही थी। अच्छा हुआ कि गाड़ी चल दी और उपर का शोर-गुल कम हो गया; नहीं तो बेचारी भूमकू तो शायद अकुलाहट के मारे रो पड़ती।

भूमकू की नजर फिर मोटर पर मँडराने लगी।

मनोरदा बोले : 'खाती क्यों नहीं ? क्या देखती है ?'

भूमकू ने उत्तर न देकर पूछा : 'एँ काका, जो अपने वाली मोटर में बैठ हैं वे सब अपनी तरफ के हैं ?'

मनोरदा लड़्डू का अन्तिम टुकड़ा मुँह में डालते हुए, बिना देखे-समझे ही बोले : 'हाँ-हाँ !' और हाथ धोने में लग गये।

भूमकू ने थोड़ी देर रुककर फिर पूछा : 'परदेस गये होंगे, क्यों ?'

बीड़ी सुलगाते हुए मनोरदा ने सिर हिलाकर हाँ कहा।

'किसी को पहिचानते भी हो, काका ?'

मनोरदा तंग आकर बोले : 'मरने दे न ! तुझे क्या करना है पहिचानकर ?'

भूमकू की जीभ तो रुक गई, लेकिन आँखें मोटर पर ही मँडरा रही थीं। थोड़ी देर बाद आँखें मिटिमाती हुई कातर स्वर में बोली : 'एँ काका ! चलो न, अपने भी घर चलें !'

मनोरदा कुछ भड़क उठ, लेकिन बिलकुल ठंडे स्वर में बोले : 'अरे, पागल तो नहीं हो गई ! अभी अमदाबाद तो पहुँचने दे।' फिर कुछ रुककर बोले : 'एकबार अमदाबाद देख तो सही !'

'चूल्हे में जाय, मुझे नहीं देखना है !' आवाज़ कुछ रूआँसी थी।

मनोरदा कुछ कड़ककर बोले : 'चल-चल पागल मत बन ! जरा आगे-पीछे का भी विचार कर !' कुछ रुककर कहा : 'अभीतक घर ही तो थी ।'

भूमकू कुछ न बोली । उसकी आँखें तो अभी भी मोटर पर लगी थीं । उसे चलता देखकर मृगनृणा की डोरी टूट गई । आँखों से भरभर मोती भरने लगे । 'देखना बिटिया, मैं टिकिट कटा लूँ ।' मनोरदा की आवाज़ सुनकर कुछ चौंकी, और स्वस्थ होकर 'हूँ'कार-सूचक उत्तर देकर पोटली, लुटिया वगैरह सामान को पास खींच लिया, और फिर धूल उड़ाती हुई मोटर पर उसकी नज़र मँडराने लगी । कुछ देर बाद मोटर बाह्यदृष्टि से ओझल हो गई, लेकिन आंतरिकदृष्टि से अभी भी किसी गाँव में सड़क के किनारे बने हुए होटल के पास ठहरती हुई, नदी का पुल पार करती हुई, तालाब के बांध पर से गुजरती हुई, जंगल में प्रवेश करती हुई दिख रही थी । गाँव के पास वाला खांडा पहाड़ दिखे न दिखे कि उसका ध्यान टूट गया ।

'चल उठ, पोटली ले ले, अन्दर जाकर बैठें ।' कहते हुए मनोरदा का हाथ जेब की तली तक जाकर टिकटों को टटोल आया । भूमकू को आगे बढ़ता देखकर बोले : 'क्यों, यह लुटिया नहीं लेना है ?'

भूमकू ने लौटकर लुटिया उठा ली ।

प्लेटफार्म पर बैठते हुए डरते-डरते भूमकू ने पूछा : 'क्यों काका ! अब मोटर आधी दूर तो...'

मनोरदा गुस्सा हो गये : 'तू भी जब से एक ही बात के पीछे पड़ी है ! मेरी तो नाक में दम आ गया !' और कुछ रुककर ठंडे स्वर में बोले : 'मुझे तो ऐसा लगता है बिटिया, कि अमदाबाद देखते ही तू हक्कीबक्की हो जायेगी !' और सुनी हुई बात पर से बात करने लगे : 'वहाँ तो मोटरें ही मोटरें हैं; चलने के लिये रास्ता भी नहीं मिलता । मुझे लगता है कि तू तो देखकर पागल हो जायेगी !' कहकर कुछ मुस्कराये । लेकिन भूमकू की एक रेखा भी नहीं बदली ।

उसके बाद मनोरदा भी कुछ न बोले; लेकिन उनकी नज़र देखने से ऐसा लगता था कि वे हरघड़ी गाड़ी की प्रतीक्षा कर रहे हैं। एक आदमी से पूछकर 'पूरे पाँच' बजने का यकीन भी कर लिया। इतने में सीटी सुनाई देने से उन्होंने संतोष की साँस ली, लेकिन भूमकू को कैसा लग रहा था यह तो उसका दिल ही जानता था ! गाड़ी आते ही मनोरदा के साथ वह भी उनकी बगल में बैठ गई। इन्जिन की सीटी सुनते ही भूमकू ने एक ठंडी साँस भरी। वह होठ चबाती हुई सिर नीचा किये बैठी रही। सिर पर साड़ी का पछा कुछ आगे सरकाया।

आठेक वर्ष पहले दो आने खर्च करके गाड़ी में बैठने का शौक पूरा करनेवाले मनोरदा को क्या खबर थी कि गाड़ी में कैसे-कैसे लोग होते हैं ! भूमकू की बगल में बैठी हुई एक औरत पूछने लगी : 'कौन गाँव की हो, बे'न ?'

भूमकू से पहले ही मनोरदा बोल उठे : 'हम तो उधर पहाड़ों में रहते हैं !'

शायद भूमकू का घुँघट देखकर ही उस औरत ने पूछा होगा : 'यह बाई तुम्हारी कौन...'

'मेरी बिटिया है।' मनोरदा बीच में ही बोल उठे। लेकिन बुद्धी के एक-दो सवालों से मनोरदा का धीरज टूट गया। उन्होंने एक युक्ति अजमाई; खुद ही बुद्धिया से प्रश्न करने लगे।

लेकिन भूमकू का ध्यान उन प्रश्नों की ओर न था। दो स्टेशन निकल जाने के बाद उसने मनोरदा से पूछा : 'एँ काका ! अभी कितनी दूर है ?'

'अब तो पूरे दो टेसन हैं—तीसरा टेसन अमदाबाद का आयेगा।' मनोरदा ने कहा, और आसपास नज़र फेंककर भूमकू को सिखला दिया कि अगर कोई पूछे तो उसे क्या जवाब देना चाहिए। फिर शायद उसे खुश करने के विचार से बोले : 'देखा, कैसी गाड़ी है ? हवा की तरह जाती है न ?'

भूमकू ने सिर हिलाकर हाँ कहा; प्रयत्न करके कुछ हँसी भी। अब मनोरदा को कुछ संतोष हुआ और बीड़ी पीने लगे। भूमकू को ऐसा लगता था मानो यह पवनपाँवड़ी जैसी गाड़ी उसे धरती के किसी कोने में ले जा रही है। खिड़की के पास बैठी थी, लेकिन उसे दिशाओं का भान ही नहीं रहा था। बुद्धि इन्कार कर रही थी, फिर भी वह खांडा पहाड़ देखने के लिये आँखें खींचती थी। खिड़की से झूबता हुआ सूरज दिखाई देता था, फिर भी वह उसे पच्छिम दिशा नहीं मान सकती थी। बदली हुई दुनिया के साथ अगर वह सूरज को भी बदला हुआ मान ले, तो उसमें उसका दोष भी कैसे निकाला जा सकता है? अगर मनोरदा पास न होते तो जरूर वह सिसक-सिसक कर रो पड़ती।

दूर-सुदूर काली-काली चिमनियाँ दिखाई देने लगीं। मनोरदा ने कहा: 'देख भूमकू, अमदाबाद दिखने लगा। देखा न? अब जो आ रही है वही अमदाबाद की टेसन है।'

और स्टेशन भी आ गया। उतरने से पहले गाड़ी में बत्तियाँ चमचमाने लगीं। भूमकू के मुँह पर क्षणभर आश्चर्य की रेखाएँ दिखलाई दीं, लेकिन फिर वह शोक में—उर में—डूब गई।

स्टेशन पर उतरते ही मनोरदा ने कहा: 'क्या भूमकू, देखा अमदाबाद? कैसी बिजली की बत्तियाँ हैं! दिन-सा भालूम होता है!'

लेकिन, रात को दिन बना देनेवाली वे बिजली की बत्तियाँ, तरह-तरह के भोपू बजाकर दौड़ती हुई मोटरें, साइकिलें, ताँगे, बड़े-बड़े मकान और सुन्दर-सुन्दर दुकानों में से भूमकू को कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। अभी तक सुना था, लेकिन आज अपनी आँखों से देखा कि पृथ्वी पर 'सचमुच' कुछ है!—ऐसा भी उसे नहीं लगता था; उसकी घबराहट बढ़ती जा रही थी।

मनोरदा भूमकू को नई-नई चीज़ें दिखाकर खुश करने के प्रयत्न में लगे रहे।

X

X

X

धर्मशाला में ठौर-ठिकाना लिखवाया और ऊपर की मंजिल पर मिले हुए कमरे में डेरा डाल दिया। किराण पर रजाइयाँ और गद्दे भी ले लिए। जब धर्मशाला का जमादार मनोरदा को बिजली की बत्ती वगैरह बतला रहा था उस समय झमकू गद्दे पर पड़ी-पड़ी अकुला रही थी। उसकी सूरत देखकर कहा जा सकता था कि वह रोना चाहती है, लेकिन रो नहीं सकती।

कुछ देर बाद मनोरदा ने झमकू से नाशता निकालने को कहा और खुद नीचे जाकर पानी भर लाये। मुँह में कौर देते हुए बोले : 'किसलिये बैठी है ? खा न !'

'तुम खाओ काका, मुझे नहीं खाना है।'

मनोरदा ने आँखें दिखाते हुए पूछा : 'क्यों ?'

'भूख न हो तो कैसे खाऊँ !' कहती हुई झमकू की आँखों से टप टप आँसू भरने लगे।

'लेकिन भूख न लगने का कारण ?'...चल, खाना शुरू कर दे, नहीं तो जानती है...

'लेकिन मुझे...' झमकू आगे न बोल सकी।

मनोरदा की आँखें अधिक चढ़ गईं। रोटि का टुकड़ा हाथ में ही रह गया। दबी आवाज़ में बोले : 'रोना-गाना बंद कर, नहीं तो मुझ से बुरा कोई न होगा, हाँ ! यहाँ परदेस में मेरी फजैती कराना है ?' कहते हुए उठे और सोरी में जाकर हाथ धो लिए। फिर सामने पड़े हुए अपने बिछौने पर बैठकर बालने लगे : 'न जाने कहाँ से कुबुद्धि सूझी जो दूसरे के पाप में शामिल हुआ !'

झमकू मनोरदा के कहने का भावार्थ—'दूसरे के' यानी खुद अपना ही समझती थी और इसीलिये शायद उसने रोना बन्द कर दिया।

उसके बाद कोई कुछ न बोला; बत्ती बुझाकर सो गये। कब सो गये इस बात की तो शायद उन्हें खुद ही खबर नहीं थी,

लेकिन जागने पर पता चला कि सूरज काफी ऊपर चढ़ आया है।

दत्तौन करके छज्जे के कटहरे पर झुककर खड़ी हुई भूमकू से मनोरदा ने आसपास का दृश्य बतलाते हुए कहा : 'भूमकू...वह ताजिया जैसा दिखता है वह देखा ? नहीं दिखता वह...बीच में पहिये जैसा गोल गोल...'

'हाँ, हाँ; वह क्या है काका ? बीच में तो कुछ बेलबूटे जैसे हैं !' कहती हुई भूमकू ताज्जुब से देखती रही।

'हाँ हाँ वही...! उसका नाम जानती है तू ? और मानो छोटे बच्चे की ओर देख रहे हों इसतरह भूमकू की ओर देखकर मुस्कराते हुए बोले : 'वह घंटाघर है घंटाघर !...'

'ओ...बाप रे ! इतना बड़ा ?' और क्षणभर रुककर पूछा : 'ऐं काका, यह क्यों बनाया होगा ?'

'क्यों ? सब को टे'म देखने के लिये। तू जानती है भूमकू, शहर के लोगों को तो इसी पर से दिन निकलने और डूबने की खबर पड़ती है, समझी ?' और फिर मनोरदा आसपास के 'आकाश' से बातें करते हुए मकान, दूर-दूर सिर उठाकर धुआँ उगलती हुई मिलों की चिमनियाँ, एक-दूसरे का पीछा कर रही हों इसतरह दौड़ती हुई मोटरें वगैरह दिखलाने लगे। भूमकू तरह-तरह की बातें पूछती थी। मनोरदा अभी भी भूमकू को अधिक खुश करके न जाने क्या-क्या बतलाते, लेकिन उन्हें यकायक कुछ याद आ गया।

जेब से एक कागज़ निकाला और फिर रखकर बोले : 'चल, थोड़ा-सा खा लें।'

भूमकू का विचार तो इन्कार करने का था लेकिन उस समय वह कुछ न बोली। सीढ़ियाँ उतरते हुए कहा : 'मैं तो बिलकुल थोड़ा खाऊँगी काका !'

'ठीक, तू चल तो सही।' कहते हुए मनोरदा आगे बढ़े। सच-मुच भूमकू ने बिलकुल थोड़ा खाया। लौटते समय मनोरदा ने कुछ उलहने के स्वर में कहा : 'पगली, उसमें एक कौर जितना भात

था, उसी में तुने आधा...यों ही तीन पैसे बिगाड़े !'

‘मैंने कहा तो था।’

‘कहा था तेरा सिर !’ कहकर मनोरदा चुप हो गये ।

कमरे में आने के बाद मनोरदा ने साफा बाँधा, कपड़े ठीकठाक किये, और गले में कमरी लपेटकर बोले : ‘भूमकू, मैं ज़रा बाहर जाता हूँ, तू यहीं कोठरी...’

‘नहीं काका, मैं अकेली नहीं रहूँगी !’ भूमकू ने लाड़भरे ढंग से घबराये हुए स्वर में कहा ।

‘लेकिन मैं तो अभी वापिस आता हूँ, तू साँकल लगाकर सो जा, इस भरी बस्ती में डर किसका ?’ लेकिन मनोरदा ने थोड़ा-सा भी विचार किया होता तो मालूम हो जाता कि भूमकू को सच्चा डर तो भरी बस्ती का ही था । आखिर उसे समझा-बुझाकर वे बाहर निकले ।

धर्मशाला के दरवाज़े पर आते ही जेब में रखा हुआ कागज़ बतलाकर लोगों से कहने लगे : ‘जरा देख दो सा’ब, यह अमर-सींग कहाँ मिलेगा ?’ और जिसतरह उछलती-टकराती हुई फुटबॉल घड़ी में पीछे और घड़ी में आगे बढ़ती हुई अंत में गोल पर जा पहुँचती है उसीप्रकार दोपहर के समय मनोरदा एक मिल के फाटक पर आ पहुँचे । पहरेदार से पूछा : ‘एँ जमादार सा’ब, अमर-सींग कहाँ मिलेगा ?’

पहरेदार ने गांव और जाति वगैरह पूछकर कहा : ‘तुम उधर बैठो, मैं अभीहाल बुलवाये देता हूँ ।’ और एक आदमी के हाथ संदेशा भी भेज दिया ।

मनोरदा ने मूँछों पर बल दिये हुए एक अड़तीसेक बरस के जवान को मस्ती से अपनी ओर आते देखा और फौरन पहिचान लिया ।

दूर से मनोरदा पर नज़र पड़ते ही वह बोला : ‘ओ हो हो ! मनोर काका !’ और राम राम करने के बाद पूछा : ‘बयो काका,

तुम यहाँ? कैसे भूल पड़े आज?’

‘भूला नहीं अमर भैया—खुद चलकर तुम्हारे पास आया हूँ।’ कहकर मनोरदा हँसने लगे।

‘ठीक, चलो घर चलें।’ कहकर अमरसिंह आगे हो लिया। रास्ते में उसने मनोरदा से कौन-कौन हो, कब आये, कहाँ ठहरे हो, वगैरह प्रश्न पूछे। जिन में से मनोरदा ने कुछ का सच्चा और ‘कौन-कौन आये हो’ इसका उड़ाऊ जवाब दिया।

इतने में घर आ गया। अमरसिंह एक मज़बूत हथोंवाली कुर्सी सरकाकर बोला : ‘बैठो काका!’

‘अरे नहीं भैया, अपने राम तो...’

‘अरे, ऐसी क्या बात करते हो? आराम से बैठो।’ अमरसिंह ने कहा।

चूँकि मनोरदा कभी-कभी होटल में था और किसी जगह कुर्सी पर बैठे ज़रूर थे, लेकिन आराम से नहीं। आज तो वे पैर पर पैर रखकर आराम से झुककर बैठ गये।

चाय-नाश्ते का आर्डर भिजवाकर अमरसिंह आराम से चटाई पर बैठ गया। अपने गांव के और आसपास के समाचार पूछकर बोला : ‘काकी को भी ले आना था न, काका!’

‘कहाँ? अमदावाद में?’ और अमरसिंह की ओर ताकते रहे।

‘हाँ, हाँ।’

मनोरदा खेतीबाड़ी और दोर-ढंगल की अड़चन का हवाल सुना रहे थे कि इतने में चाय-नाश्ता आ गया, और दोनों ने नीचे बैठकर उसे पूरा किया।

‘जा, बे, खाते में डलवा देना।’ कहकर अमरसिंह ने होटल के लड़के को रवाना किया, लेकिन एकदम कुछ याद आया और बोला : ‘अबे ओ लौंडे, दो पान और दो ताजछाप ले आ!’ कप-रकाबी यहीं रख जा, दौड़कर आना बेटा!’

और सचमुच लड़का जल्दी ही आया। बहुत आनाकानी के

बाद मनोरदा अमरसिंह के आग्रह के वश हुए। दोनों ने पान खाए और सिगरेट भी सुलगाई !

‘काका, यह अमरसिंह यकायक कैसे याद आ गया ?’ पूछकर हँसती हुई नज़र से काका की ओर ताकने लगा।

‘बिना काम कोई आता होगा अमर भैया !’ और बाहर देखते हुए ‘लेकिन बात जरा...’

अमरसिंह समझ गया। बिचली दीवार पर एक रजार्ह डाल दी, दरवाज़ा अधखुला रखा। मनोरदा दीवार के सहारे टिककर बैठे। सामने हाथ के सहारे पैर मोड़कर बैठे हुए अमरसिंह ने कहा : ‘लो बोलो अब।’ मनोरदा को कुछ मकुचाता देखकर फिर कहा : ‘मेरी आदत तो जानते ही हो काका, भले ही चाहे जैसी बात हो—सिर कटने की क्यों न हो—लेकिन जैसी सुनी वैसी ही मानो ज़मीन में गाड़ दी।’ और सिगरेट का कश खींचकर बोला : ‘इस बात से तो तुम बेफिकर रहना।’

सिगरेट के एक के बाद एक दो-तीन कश खींचकर मनोरदा ने बात शुरू की : ‘परसाल तुमने जो बात की थी वह याद है ?’ और अमरसिंह को विचार में पड़ा देखकर बोले : ‘खबर नहीं है, जब लखमा पटेल की लड़की कुँएँ में गिरकर मर गई थी, उस दिन तुम्हीं ने...’

‘अरे हाँ हाँ, ठीक है, अब याद आया...’

‘खबर है, उस दिन तुमने अपने अमदाबादी वामनों की और दूसरी बातें की थीं ?’

‘हाँ हाँ, अच्छीतरह याद है; उस दिन पंचायत पूरी होने के बाद तुम रात को बैठे थे और आधीरात तक अपनी बातें हुई थीं ?’ इतना कहते हुए तो अमरसिंह तनकर बैठ गया था। मनोरदा को चुप देखकर फिर बोला : ‘वह तो मैं समझ गया काका, लेकिन वह है कहाँ की ?’

मनोरदा ने भूमकू की कहानी शुरू से आखिर तक कह सुनाई; आसपास के संयोगों का भी वर्णन किया। अन्त में बोले : 'लेकिन जैसे भी हो, मुझे जरा जल्दी छुट्टी दे दो तो अच्छा, अमर भैया !'

'अरे, भगवान ने चाहा तो कल इसी वक्त तक तो तुम फारिग हो जाओगे काका !' अमरसिंह की आँखें ही नहीं सारा शरीर चमक रहा था।

'बस बस, भैया !' और जेब से बीड़ी निकालते हुए बोले : 'लो उठो, काम फतह करो !'

'अच्छी बात, लेकिन एकबार मुझे देखना तो पड़ेगा न ?' कहते हुए अमरसिंह उठा; आदने में देखकर साफा जरा ठीकठाक किया; धोती को खींचकर नीचे उतारा; कोट पहिना और हाथ में सीसे की मूठवाला चमड़े से मढ़ा हुआ बेंत लेकर बोला : 'लो चलो।' दोनों किवाड़ लगाकर सड़क पर आ गये। बस-स्टेण्ड पर कुछ देर तक ठहरना पड़ा।

अमरसिंह के एक हाथ की उँगलियाँ मूँछों से खेल रहीं थीं। निम्बू की फाँक जैसी उसकी आँखों में एक प्रकार की चमक थी। अमरसिंह ने दूर से बस को आते देख लिया और कन्डक्टर की 'दो आदमी' यह आवाज़ सुनते ही दरवाज़ा रोककर खड़ा हो गया। मनोरदा को चढ़ाकर खुद अन्दर घुसा। कभी से खड़े-खड़े जम्हाइयाँ लेते हुए दो जवानों में से एक बोला : 'देखा न, ठाकुर का रौब ! कौन कहता है रजपूती राँड हो गई ?'

दूसरे ने मुँह मटकाते हुए जवाब दिया : 'रजपूती तो राँड नहीं हुई लेकिन बेचारा राजपूत रँडुआ हो गया है !'

चलती हुई बस में से अमरसिंह उन दोनों पर एक विजेता जैसी नज़र फेंककर उनकी जीभ पर पानी चढ़ाता गया।

X

X

X

दरवाज़ा खटखटाने की आवाज़ सुनकर भूमकू उठी और मनोरदा की आवाज़ पहिचानकर दरवाज़ा खोल दिया।

‘जरा पानी तो भर ला, बिटिया !’ मनोरदा ने अन्दर घुसते हुए कहा ।

लुटिया लेकर बाहर निकलती हुई भूमक की नज़र अमरसिंह की नज़र से मिली और हृदय काँप उठा । न जाने क्यों उसे लुटिया लेकर ऊपर जाना अच्छा ही नहीं लगता था, फिर भी गये बिना कहाँ छुटकारा था ?

भूमक पानी पिलाकर फिर से भरने गई । अमरसिंह ने कहा : ‘है तो बुलबुल जैसी, काका ! ऐसी खूबसूरती तो...’

मनोरदा बीच में ही बोल उठे : ‘खूबसूरत है इसीलिये तो...’ अमरसिंह ने बीड़ी सुलगाते हुए कहा : ‘भगवान चाहेगा तो कल ही तुम फारिग हो जाओगे काका !’ फिर कुछ रुककर बोला : ‘क्या बताऊँ, अगर तुमने मुझे दो-चार दिन पहले खबर दे दी होती तो...’

‘जो हुआ सो ठीक, लेकिन तुम जरा जल्दी से तय करा दो तो अच्छा हो ।’ मनोरदा ने कहा । उनका चित्त ठिकाने नहीं था ।

‘अरे यों !’ कहते हुए अमरसिंह ने छुटकी बजाई । ठंड के दिन होने पर भी उसे फिर से प्यास लग आई । बोला : ‘कहाँ गई ? क्या नाम है इसका ? भूमक ? जरा पानी तो पिला !’

भूमक के हाथ से लुटिया लेता हुआ अमरसिंह उसके मुँह की ओर ताकता रहा । पानी पीने के बाद गला खँखारा और मुँहों पर बल देता हुआ खड़ा हो गया । मनोरदा उसे नीचे तक भेजने गये । अमरसिंह ने जाते समय कहा : ‘हो सका तो आज ही शाम को आऊँगा, काका !’

‘हो क्या सके ? होना ही चाहिए अमर भैया !’ कहकर मनोरदा वापिस लौटे ।

आकर देखा तो भूमक गद्दे पर पड़ी थी । मनोरदा के बैठने पर बोली : ‘काका, घर कब चलोगे ?’ और कातर दृष्टि से मनोरदा की ओर देखने लगी ।

मनोरदा बोले : ‘पागल तो नहीं हो गई बिटिया ! घर किसके

पास जाना है ?'

भूमकू क्या जवाब देती ? मनोरदा की ओर इसतरह ताकती रही मानो उनके आरपार देख रही हो, और आँखों से टप टप आँसू भरने लगे।

मनोरदा कुछ खीझकर बोले : 'घर रहने जैसा रखा होता तो मेरे सिर यह आफत ही क्यों आती !'

'कुछ भी हो...यहाँ नहीं रहना है...' कहते हुए भूमकू फूटफूटकर रो पड़ी।

मनोरदा आपे से बाहर हो गये : 'तो क्या यहाँ भूख मारने आई थी ? मेरी फजैती कराना है क्यों ?' कहकर चुप हो गये।

कुछ देर तक शांत रहने के बाद खड़े होकर बोले : 'मुझे क्या करना है ! तुझे घर आना है तो मैं ले चलूँगा; लेकिन जब आये ही हैं तो पूरा शहर तो देख लेना चाहिए; या यों ही चलो चलो...!' और फिर बीड़ी सुलगाते हुए बाहर निकल गये।

X

X

X

शाम को जब मनोरदा वापिस आये उस समय भूमकू साड़ी का पल्ला मुँह में दबाये पड़ी थी। मनोरदा बोले : 'चल उठ, थोड़ा खा आये।'।

भूमकू के मुँह पर आ गया : 'मुझे भूख नहीं लगी।' लेकिन मनोरदा के डर से वह चुपचाप खड़ी हो गई।

खाना खाकर लौटते समय मनोरदा भूमकू को शहर की चहल-पहल और रँगते दिखाने लगे।

सामने वाले फुटपाथ पर जाते हुए युवक-युवतियों को बतलाकर मनोरदा ने कहा : 'उन्हें देखा भूमकू—कैसे हाथ में हाथ डालकर जा रहे हैं। दोनों मर्द-औरत हैं ! यहाँ किसी को धूँघट-बूँघट नहीं निकालना पड़ता—सब अपने-अपने घर के राजा हैं !'

'आग लगे ऐसी जिन्दगानी में !' भूमकू ने मुँह बिगाड़कर कहा।

कमरे पर आने के बाद मनोरदा को खुश देखकर भूमकू बोली :

‘अमदाबाद तो देख लिया काका ! चलो, कल घर चलें ।’

‘अभी कल तो होने दे !’

कुछ देर बाद भूमकू ने फिर पूछा : ‘गाड़ी तो रात को भी जाती होगी, क्यों काका ?’

मनोरदा कुछ देर तक उसकी ओर घूरते रहे । भूमकू ने देखा या न देखा यह तो वही जानती होगी; लेकिन उनकी आँख में गुस्से की एक छोटा-सी बदरिया आकर उड़ गई । कुछ गम्भीर होकर बोले : ‘देख भूमकू, तू बच्चों की तरह ठनगन करती है यह मुझे बिलकुल पसन्द नहीं है ! इसीलिये तो मैंने वहीं सबकुछ साफ-साफ कह दिया था, नहीं तो...’

भूमकू ने बीच में ही पूछा : ‘क्यों काका, मेरी माँ को मालूम है कि मैं यहाँ आई हूँ ?’

‘अरी पगली !’ कहकर लणभर भूमकू की ओर देखते रहे और ऊबकर बोले : ‘एकवार कह तो दिया कि उसी ने तो इस आफत में डाला है ! नहीं तो मुझे क्या पड़ी थी ?’

भूमकू की आँखें डबडबा आईं । मन ही मन बड़बड़ाई : ‘माँ मुझ से मिलने भी न आई !’

मनोरदा उदास होकर बोले : ‘अरी कमअकल ! किसकी माँ और किसकी बेटी ! तकदीर समझ कि तेरी माँ इतनी भली निकली... और मुझे भी उसकी बात मानना पड़ी !’ और फिर तो मनोरदा ने नर्म आवाज़ में सब बात नमक-मिर्च लगाकर कह सुनाई कि—तेरी माँ रात को मेरे घर आकर किसतरह गिड़गिड़ाई, कितनी रोती-बिलखती थी, और जब बिटिया को ठिकाने लगा देने का वचन ले लिया तब उठी । साथ ही साथ भूमकू को पीहर, ससुराल और सगे-सम्बन्धियों के विरोध की धमकी दिखाकर यहीं रह जाने की सीख और हिम्मत भी दी । शहरी सुख के कई दृष्टान्त भी दिये, लेकिन योगफल में शून्य ही आया ।

भूमकू बोली : 'भाड़ में जायें नहीं रखेंगे तो ! कुश्नों तो है ! लेकिन वापिस लौट चलो काका, मैं तुम्हारे पैर पड़ती हूँ !' और सचमुच भूमकू मनोरदा के पैरों में लोट गई ।

मनोरदा एकदम आगबबूला हो उठे : 'उठ उठ यहाँ से !' उनकी आँखें गुस्से से लाल हो गई थीं। खड़े होकर बोले : 'साली कमीन की जात जो ठहरी ! जरा नमी से कहा तो सिर पर चढ़ गई ! जानती नहीं...यहीं छोड़कर चला जाऊँगा, फिर रोती रहना अपने बाप को !' इतने में किसी के पैरों की आहट सुनकर एकदम चुप हो गये।

काफी रात तक अमरसिंह की वाट देखते-देखते सो गये ।

× × ×

सवेरा होते ही अमरसिंह आ पहुँचा। मनोरदा ने किवाड़ खोले।
बैठते हुए अमरसिंह बोला : 'काका, निकले तो हो शकुन देखकर !'

‘ऐसा!’ कहकर मनोरदा ने उसे इशारे से चुप कर दिया। धीरे-से एक-दो आवाज़ें लगाकर भूमकू को बुलाया, लेकिन जवाब न मिला। अमरसिंह को धीरे-से बोलने की सूचना दी।

अमरसिंह बोला : 'एकबार खरीददार को बतलाना पड़ेगी, लेकिन यहाँ यह कैसे हो सकता है ?'

‘क्यों?’

‘उसे यहाँ कैसे लाया जाये ? अगर कोई...’

मनोरदा बीच में ही बोले : 'यहाँ तो सैकड़ों लोग आते-जाते हैं, इसमें क्या बड़ी बात है?'

अमरसिंह कुछ हँसा और बोला : 'जरा बात तो सुन लो। हिन्दू धर्मशाला में मुसलमान आये इसमें तो कोई हर्ज़ नहीं है, लेकिन किसी को जरा-सा भी शक हो गया तो आफत आ जायगी!' और मनोरदा के मुँह पर विचित्र भाव देखकर बोला : 'पूरे छह सौ मिल सकते हैं काका!'

‘ऐसा!’ मनोरदा बोले। अमरसिंह को ऐसा लगा मानो वे कुछ

विचार में हों; लेकिन उसकी परवाह किये बिना भूमक की ओर आँखें नचाते हुए बोला : 'माल तो असली है, इसलिये भूटपट कल्दार गिन लेना।' फिर कुछ रुककर बोला : 'लेकिन विचार क्या करते हो ? इसे मेरे घर ले चलो। दोपहर के पहले ही तुम्हें छुट्टी मिल जायेगी, और मैं भी...'

'हाँ हाँ, ठीक है। इस पाप से जितनी जल्दी छूट जाऊँ उतना ही अच्छा है।' मनोरदा मन ही मन बड़बड़ाये। मुँह के भाव भी क्षण-क्षण में बदल रहे थे। अमरसिंह कुछ कहना चाहता था, लेकिन भूमक को जागता देख चुप हो गया। मनोरदा ने कुछ तिरस्कार के साथ भूमक से कहा : 'जा जा, जाकर मुँह धो ले !'

भूमक हाथ-मुँह धोने चली गई। मनोरदा उसकी पीठ देखते रहे। अमरसिंह कहने लगा कि कितनी मेहनत और पैसे का पानी करने के बाद यह सौदा तय हुआ है; लेकिन मनोरदा का ध्यान उसकी बातों में नहीं था।

'कहाँ गई वह ? क्यों नाहक देर लगा रहे हो, काका ?'

चूँकि मनोरदा को मालूम हो गया था कि भूमक ऊपर आ गई है और खिड़की की ओट में खड़ी है; लेकिन न जाने उन्होंने क्यों अमरसिंह के सवाल का जवाब नहीं दिया।

'अच्छा, तो फिर बुलाओ जल्दी !' अमरसिंह फिर बोला।

'बुलाता हूँ।' कहकर मनोरदा उठे, लेकिन दरवाज़े से ही वापिस लौट आये। मनोरदा के इस बरताव की अपेक्षा उनके चहरे ने अमरसिंह को ताज्जुब में डाल दिया था। वह कुछ पूछे इससे पहले ही उसके पास बैठते हुए मनोरदा ने कहा : 'क्या मुसलमान के सिवा कोई दूसरा—अपनी जात का नहीं मिल सकता ?'

'अरे, इसमें क्या हो गया ? राम कहो या रहीम, लेकिन भगवान तो एक ही है, काका !'

'बात तो ठीक है, भैया ! लेकिन हिन्दू लड़की हिन्दू के घर में जादी तो कुछ ठीक लगता।'

चूँकि अमरसिंह ने छहसौ का आँकड़ा रखकर उस मुसलमान की खूब तारीफ की, लेकिन वह बात मनोरदा के दिमाग में नहीं जमी।

‘एक ठाकुर भी है, लेकिन वहाँ से बहुत कम मिलेगा !’

‘कहो तो सही !’

‘इससे आधे !’

मनोरदा एक ठंडी सांस खींचकर बोले : ‘ठीक भैया ! आधे ही सही, लेकिन धरम तो बचेगा।’

अमरसिंह ने भी इस धर्म के झंझट में न पड़कर बात बदल दी। मनोरदा की धर्मपरायणता की प्रशंसा भी की। उठने की तैयारी करते हुए मानों कुछ यकायक याद आ गया हो इसतरह अचक-अचककर बोला : ‘मेरी समझ में तो, काका, पहले अपना हिस्सा...’ और आगे न बोलकर पैसे के बारे में, आपसी सम्बन्धों पर और व्यावहारिक विषय पर कुछ व्याख्यान दिया।

मनोरदा कुछ हँसकर बोले : ‘तुम्हीं कहो न भैया ?’

‘मैं क्या कहूँ काका ! खुद ही देख लो कि मैं कितनी दौड़-धूप कर रहा हूँ।’ कहकर अमरसिंह ने पुलिस और साथ ही साथ बस-भाड़े की भी बात की।

मनोरदा बोले : ‘अभी मामला तय तो होने दो, फिर हिस्से हो जायेंगे।’

लेकिन अमरसिंह ने तय कर लेने की ही सलाह दी और अन्त में उसने खुद ही तीसरा हिस्सा माँग लिया। मनोरदा की सम्मति देखकर कहा : ‘अपना कहाँ एक ही बार का काम है, काका ? अगर तुम्हें सालता हो तो कुछ कम दे देना।’ फिर कुछ रुककर बोला : ‘यह तो तुम अचानक आ पहुँचे इसलिये; लेकिन अबकी बार तो पूरी थैली ही समझ लेना !’ और फिर रंग में आये हुए अमरसिंह ने मनोरदा को इस धंधे सम्बन्धी कुछ सूचनाएँ दीं कि— भविष्य में किस होशियारी से काम लें; वह खुद यहाँ कैसे-कैसे

आदमियों की खोज में रहेगा—वगैरह। अभी भी वह आगे बोलता, लेकिन मनोरदा को कुछ उदास-सा देखकर बोला : ‘तबियत तो ठीक है न, काका?’ और फिर उन्हें हाँ कहते देखकर, कुछ रुक-कर बोला : ‘कहाँ है वह ? ज़रा देख तो लूँ ठाकुर के घर में जाँचेगी या नहीं !’

‘वह खड़ी है बाहर। मरने दो न, इसमें क्या देखना है ? यों तो बामन ठाकुर सभी के घरों में छिप सकती है।’

अमरसिंह बनावटी हँसी हँसकर बोला : ‘ठीक काका, अब तो शाम को मिलूँगा।’ और खड़ा हो गया।

‘अरे भैया ! सुबह-शाम करने के बदले भगड़ा साफ करो न ! दो-चार कम या ज्यादा, मैं तो अब थक गया हूँ !’

अमरसिंह मानो किसी गहरे विचार में डूबा हो इसतरह कुछ देरतक खड़ा रहा और फिर बोला : ‘अच्छा, अगर दोपहर का आ जाऊँ तो ?’

‘तो तो पूछना ही क्या है !’

‘अच्छा।’ कहकर अमरसिंह बाहर निकल गया। भ्रमकू पर नज़र डाली, लेकिन उसका मुँह उलटी दिशा में था।

पीछे से मनोरदा भी भ्रमकू को—‘बैठ अन्दर !’—ऐसा हुक्म देकर बाहर निकले। शायद शहर देखने निकले होंगे, लेकिन ‘देखने जैसी’ उनकी नज़र नहीं लगती थी। फुटपाथ पर चलते हुए भी मोटर का हार्न सुनकर बिचक जाते थे और आसपास देखकर फिर आगे बढ़ते थे। कुछ दूर चलने पर अच्छा हुआ कि उन्हें भूल जाने का डर लगा, नहीं तो शायद धर्मशाला ढूँढ़ते-ढूँढ़ते परेशान हो जाते। वे वापिस तो लौट आये, लेकिन अन्दर न जाकर बाहर—धर्मशाला के दरवाज़े पर ही खड़े रहे।

एक ढाबेवाले ने पूछा : ‘काका, जीमना है ?’

‘नहीं भैया, नहीं !’ और खुराक तथा पैसे का हिसाब गिनानेवाले उस ढाबे के नौकर को दुतकारते हुए बोले : ‘जा जा,

किसलिये जी खा रहा है ?'

नौकर बोला : 'काका, रोटी तो सब खाते हैं, लेकिन जी कहीं खाते होंगे ? चलो, खाना हो तो।' कहकर हँसता हुआ चला गया।

मनोरदा झुंझलाकर आँखें दिखाते हुए बोले : 'साला लँगूर कहीं का !'

कुछ देर बाद वे ऊपर गये। किवाड़ खोलती हुई भूमक की ओर बिना देखे ही अन्दर घुसते हुए बोले : 'चल छोरी, खा आयेँ !'

भूमक चुप थी।

मनोरदा चिढ़कर बोले : 'इसतरह भूखों क्यों मरती है ? खिड़की से गिर पड़ जिससे भगड़ा मिटे !'

भूमक दरवाज़ा पकड़कर बाहर देखती खड़ी रही। मनोरदा फिर बोले : 'कहता हूँ, खड़ी-खड़ी आँसू क्या बहाती है ? इधर आकर मर न !' और खुद अपने से कह रहे हों इसतरह बढ़बढ़ाये : 'साली कहाँ से झंझट मोल ली !'

भूमक ने सिसकते हुए कहा : 'चलो न ! मैंने कब खाने को मना किया है ?' गद्दे पर बैठते हुए मनोरदा ने भी टिमटिमाती हुई आँखों से झरते हुए दो-चार आँसू देखे और अपना वही रोज़ का वाक्य बोले : 'मर जा न, इसलिये भगड़ा मिटे !'

काफ़ी देर तक कमरे में एक भयानक निस्तब्धता छाई रही। दोनों तरफ की सड़कों पर हमेशा चलनेवाले तांगों मोटरों की धमाल कमरे में बैठे हुए इन दो आदमियों के कानों तक नहीं पहुँच रही है—ऐसा कोई भी देखनेवाला कह सकता था।

मनोरदा ने बीड़ी सुलगाई और एक-दो कश खींचकर बोले : 'उठ उठ, बैठी क्यों है ? जाकर मुँह-बुँह धो ले !' अभी उनकी आवाज़ में कुछ रूखापन था।

मानो महीनों की बीमारी से उठी हो, इसतरह मुरझाये हुए भूमकू के चहरे पर से मनोरदा ने नज़र हटा ली, लेकिन फिर उसकी पीठ पर जाकर चिपक गई। ओझल होने पर मनोरदा बड़बड़ाये : 'शायद यों ही मर जायेगी !' बीड़ी फेंकते हुए सोचने लगे : 'यह अमरसिंग भी सुबह-शाम करता रहता है !' ऐसी खबर होती तो मैं आता ही क्यों !' इतने में भूमकू आ गई और दोनों ढाबे में गये।

ढाबे में पैसे चुकाकर बाहर निकलते हुए मनोरदा ने फिर अपना गुस्सा भूमकू पर उतारा : 'खाया कुछ नहीं और यों ही पैसे बिगाड़े ! खाना नहीं था तो फिर आई किसलिये थी ?' और 'शायद ऐसा न हो कि कहीं मोटर-बोटर के आगे गिर पड़े'—यह विचार आते ही गरज उठे : 'चल, आगे हो जा !'

भूमकू आगे हो गई।

धर्मशाला के दरवाज़े पर खड़े होकर मनोरदा ने फिर हुक्म दिया : 'जा, ऊपर कमरे में किवाड़ बन्द करके बैठ; मैं अभीहाल आता हूँ।'

भूमकू के जाने के बाद मनोरदा अन्दर आये। बन्द होते हुए किवाड़ों को देखा और फिर बाहर जाकर खड़े हो गये। रास्ते पर लगी हुई उनकी नज़र से मालूम होता था कि वे अमरसिंह की बाट देख रहे हैं।

और सद्भाग्य से कुछ ही दूरी पर अमरसिंह आता दिखाई दिया। एक दूसरा आदमी भी साथ था।

'क्यों काका, क्या बाट देखकर ही खड़े थे ? चलो जल्दी ऊपर।' कहता हुआ अमरसिंह आगे हो गया।

मानो जोरों से सिरदर्द हो रहा हो इसतरह सिर दबाते हुए मनोरदा पीछे-पीछे चलने लगे। ज़ीने के पास आकर धीरे-से अमरसिंह से कहा : 'तुमने बड़ी देर...' लेकिन बाकी शब्द 'लो चलो' कहकर दवा दिये।

कमरे में पहुँचने पर मनोरदा के बदले अमरसिंह ही झमकू से बोला : 'जा, नीचे से पानी भर ला !' और उसके जाने पर नवागन्तुक से कहा : 'देखा साहब, है न काठियावाड़ी कवूतर !' फिर मनोरदा को बुलाते हुए कहा : बाहर क्यों खड़े हो काका ? लो, सिगरेट तो मुलगाओ।' और पाकिट से सिगरेटें निकालीं।

पान चबाना छोड़कर अमरसिंह अपने साथी से मनोरदा की तारीफ करने लगा। यह बुद्धे दिखते हैं सीधे-सादे, लेकिन कितनी ही लड़कियों की जिन्दगी बचा ली है साहब ! और अपनी जात में तो इन्होंने कई कुँवारों के—जिन्हें औरत तो क्या, औरत का कपड़ा तक छूने को नहीं मिलता था—घर बसा दिये हैं !' कहकर सिगरेट का सड़ाका मारा और फूट...करके धुआँ निकाल दिया। फिर कहने लगा : 'अरे राजा ! तुम्हें भी कब से गरम चपातियाँ मिलने लगतीं, लेकिन काका को अब सूझा...'

मनोरदा को अपना यह परिचय शायद भैसों के व्यापारी जैसा लगा होगा इसलिये बीच में ही बोल उठे : ठीक अमरसिंग, यह सब छोड़कर असली बात करो !' उनके मुँह पर परेशानी की रेखाएँ इतने अधिक प्रमाण में थीं कि अमरसिंह कुछ सिटपिटा गया।

झमकू पानी देकर दरवाज़े के बाहर जाकर खड़ी हो गई, और कुछ देर बाद वहाँ से हटकर खिड़की में पहुँच गई। मनोरदा ने अमरसिंह को 'लो, खतम करो अब !' ऐसा कुछ इशारा किया।

'तो फिर देख लिया न मथुर भैया ?' अमरसिंह आँखें नचाकर बोला, और मथुर भैया की मुस्कराती हुई शक्ल देखकर—या फिर शायद मनोरदा की शक्ल देखकर बोला : 'मैंने जो कुछ कहा था, उसमें है जरा भी मीनमेख ?' और खड़ा होकर बोला : 'अच्छा तो चलो;' कहकर मनोरदा से कहा : 'मैं जरा इन्हें भेज आऊँ; आध-घन्टे में आता हूँ।' कहकर दोनों चल दिये।

कुछ ही देर बाद मनोरदा ने झमकू को बुलाया। उनकी आवाज़ में स्नेह और कोमलता दोनों थे :

‘भूमकू ! यहाँ तो आ बिटिया ! किवाड़ लगा दे ।’ और भूमकू को अपने पास बैठाया । पीठ पर मनोरदा का हाथ फिरते ही वह रो पड़ी । दबती हुई सिसकियों से काँपता हुआ शरीर देखने से ऐसा लगता था मानों उसका अंग-प्रत्यंग रो रहा है । उसकी पीठ पर फिरते हुए मनोरदा के हाथ में जादुई लकड़ी जैसा कोई इत्तन था—उसी से भूमकू के हृदय में रुदन को हिलोरें उठ रही थीं, लेकिन बाहर तो कम से कम मालूम पड़ती थीं ।

कुछ देर तक मनोरदा ने उसे रोने दिया और फिर बोले : ‘देख पगली ! इसतरह रोने से क्या होगा ! मेरी बात तो सुन—अभी जो सेठ आये थे उन्हें देखा ?—वही जिन्होंने रेशमी कपड़े पहिने थे ? उनके घर मोटर नहीं तो बगधी जरूर ही होगी । ऐसा ठिकाना तो उसी को मिलता है जिसने हजारों गउआं का दान किया हो ; समझी ? और आदमी भी कैसा शांत—धर्मात्मा है ! अमरसींग लप-लप करता था, लेकिन वह एक शब्द भी बोला ? चुप हो जा बिटिया !’ फिर कुछ रुककर बोले : ‘आज तो आँसू बहा रही है, लेकिन जब सुख में पहुँच जायेगी, उस समय इस मनोरदाका को पहिचानेगी भी नहीं !’

‘भाड़ में जाये वह सुख !’ भूमकू आँखें पोंछती हुई बोली ।

‘क्यों ?’ कहते हुए मनोरदा की शक्ल देखने जैसी थी ।

‘यहाँ न तो कोई सगा है और न सुख-दुःख की पूछनेवाला !’ भूमकू सिसक-सिसककर रोने लगी ।

मनोरदा बिगड़ उठे : ‘यह राँड क्या बोलती है ?’—और भूमकू की ओर देखकर बोले : ‘सगे-सम्बन्धियों ने रखा होता तो मेरे सिर यह बला ही कहाँ से आती !’ आगे कुछ और बोलने वाले थे, कि इतने में किवाड़ों की खड़खड़ाहट सुनते ही मुँह पर हवाइयाँ उड़ने लगीं ; लेकिन अमरसिंह को देखकर संतोष की साँस ली ।

‘क्या यह दिनभर रोती ही रहती है, काका ? यहाँ थोड़े ही इसे कोई तकलीफ देने वाला है !’ अमरसिंह ने भूमक की ओर देखकर कहा ।

‘ठीक कहते हो भैया !’ मनोरदा खड़े होकर बोले । ‘चलो, रोने दो रांड को; भले रो-रोकर मर जाये !’ कहते हुए बाहर निकल गये ।

भूमक एकदम उठकर बैठ गई; वह कह रही थी : ‘लेकिन मेरी बात तो...’

मनोरदा दरवाजे से वापिस लौट आये और आँखें निकालकर गरज उठे : ‘बैठ वहाँ...’

‘लेकिन तुम मुझे...छोड़कर...’

मनोरदा के बदले अमरसिंह बोला : ‘अरे, तुझे छोड़कर कैसे जायेंगे ? मैं किसलिये आया हूँ ? लेकर जायेंगे लेकर । बैठ, मैं तेरे लिये ताँगा ले आऊँ !’ कहकर हँसते-हँसते बाहर निकल गया ।

‘किवाड़ बन्द कर ले !’ मनोरदा ने कहा ।

अमरसिंह मनोरदा के साथ चलते-चलते धीरे से बोला : ‘इसे यहाँ से हटाना पड़ेगा, काका !’

‘इसीलिये तो मैं तुमसे जल्दी करने को कहता हूँ ।’

‘लेकिन काका, यह कोई बच्चों का खेल है ?’

मनोरदा को परेशान-सा देखकर अमरसिंह ज़रा नमी से बोला : ‘देर तो होगी ही काका ! उस बेचारे को तीन सौ का इन्तज़ाम तो करना पड़ेगा न ?’

मनोरदा कुछ रुककर बोले : ‘क्या कहा ! उस सेठ के पास पैसा नहीं है ?’

‘लो चलो काका, जरा होटल में बैठें ।’ मनोरदा की सूरत देखकर रास्ते में बात करना ठीक न समझकर अमरसिंह ने कुछ हँसकर कहा ।

और एक होटल के कोने में दोपहर की जम्हाइयाँ लेती हुई एक मेज़ भी मिल गई।

अमरसिंह ने उस आदमी की, उसे जिस पठान के पास से रुपये लेना थे उसकी, और साथ ही साथ एक-दो दिन देर होने की बात भी की।

‘तुम तो कहते थे अमरसिंग, कि ठाकुरों के पास पैसा तो मनमाना होता है लेकिन कन्या नहीं मिलती?’ कहकर तिरस्कार-पूर्ण दृष्टि से अमरसिंह की ओर देखने लगे।

‘यह सच है, लेकिन तुम अचानक घोड़े पर चढ़कर आ पहुँचे, इसलिये क्या किया जाय काका?’ और चाय की रकाबी खाली करते हुए बोला : ‘अबकी बार देखना ! मुझे जरा...’

‘अरे भले आदमी ! जो मौजूद है उसका तो कुछ कर नहीं सकते और दूसरे फेरे की बात करते हो !’ कहकर रकाबी में चाय उँडेलते हुए बोले : ‘मैं तो समझता था कि तुम आज मुझे छुटी दे दोगे; मैंने तो गाड़ी का टे'म भी पूछ लिया था।’ मनोरदा के मुँह पर अरुचि और अकुलाहट की रेखाएँ भरपूर थीं। भुँभलाहट में ही रकाबी खाली की और बोले : ‘यह दो दिन मैं निकालूँ कैसे?’ कुछ रुककर कहा : ‘अगर पाप का घड़ा फूट गया तो...’

‘इसका तो मैंने पहले से ही विचार कर लिया है। तुम इस लड़की को मेरे हवाले कर दो और फिर मजे से घूमते रहो !’

‘तुम ले जाकर कहाँ रखोगे ? और उसे कहीं पैसे लिये बिना...’

‘कैसी बात करते हो काका ! क्या मेरी कोठरी में जगह नहीं है ? कोई पूछेगा तो कह दूँगा कि मेरी औरत है।’ और हँसते-हँसते बोला : ‘काका, गाल होंगे तो गप्पें बहुत मिल जायेंगी !’

मनोरदा के मुँह पर तिरस्कार की रेखाएँ आईं न आईं और खड़े होकर बोले : ‘चलो, उठो !’

धर्मशाला के निकट आकर अमरसिंह ने कहा : ‘अच्छा, मैं जाकर ताँगा कर लूँ !’ और चल दिया।

मनोरदा ने उसे रोकते हुए कहा : 'ज़रा ठहरो तो भले आदमी !' और सिर खुजलाते हुए साफ-साफ कह दिया : 'उसे तुम्हारे घर में अच्छा नहीं लगेगा।' फिर अमरसिंह को बुरा न लगे ऐसे शब्दों में उसे बार-बार यहाँ न आने, और इन्तजाम होने पर पैसे देकर लिवा जाने को कहकर कुछ निराश भी किया।

चूँकि अमरसिंह ने भूमकू को ले जाने के लिये मनोरदा को हरतरह से समझाने की कोशिशें की, लेकिन उन्होंने एक न सुनी। बोले : 'मैं उधे समझा लूँगा। कहूँगा कि—चल, घर जाने से पहले एकबार पूरा शहर देख लें। इस बहाने शहर में घुमाता रहूँगा। शहर देखकर तो वह बड़ी खुश होती है !'

अमरसिंह ने हँसकर बात उड़ा तो दी, लेकिन उस हास्य में कितनी निराशा भरी थी—यह विश्वास तो यदि मनोरदा ने उसके मुँह की ओर देखा होता तो ज़रूर हो जाता। जिसप्रकार मिलने वाली नक़्द सौ की रकम से अधिक आनन्द तो ऊपर के पाँच-दस रुपये में होता है, उसी प्रकार अमरसिंह ने भी अगर दो-चार दिन से ऊपर के मज़े की घात लगाई हो तो यह अस्वाभाविक नहीं था। जब उसे विश्वास हो गया कि मनोरदा भूमकू को उसकी कोठरी पर नहीं भेजेंगे तब उसने वह बात छोड़ दी : 'अच्छा, तो मैं जाऊँ काका !' कहकर चल दिया।

'भले।' कहकर मनोरदा उसे जाता हुआ देखते रहे। उसकी पीठ पर लगी हुई वह तिरस्कारभरी गज़र मानो कह रही थी : 'यह तो साला बड़ा हुरामज़ादा है !' मन में सोच रहे थे : 'कुछ भी हो, इस समय तो वह मेरी लड़की के समान है।' और बड़-बड़ाये : 'मेरे सामने बोलते हुए उसे शरम भी नहीं आई !' इतने में अमरसिंह को वापिस लौटता देखकर बोले : 'क्यों वापिस आना पड़ा ?'

'मैं यह कहता हूँ' कहते हुए अमरसिंह पास आया। धीरे-से बोला : 'अगर तुम्हें जाने की जल्दी हो तो एक रास्ता निकालूँ—

उससे कहूँगा कि भाई, तू किसी भी तरह शामतक कुछ रुपयों का इन्तजाम कर दे। और अगर वह डेढ़क सौ का इन्तजाम कर दे तो तुम लेकर आज शाम की या कल सुबह की गाड़ी से रवाना हो जाओ। बाकी पचास मैं दीपचन्द सेठ के नाम पर मनियाडर से भेज दूँगा।' और मनोरदा को चुप देखकर बोला : 'अगर तुम्हें पसन्द हो तो—मुझे तो कोई जल्दी नहीं है। उल्टा मुझे तो तुम्हारे रहने से...'

'नहीं भैया नहीं, कहाँ रहने की फुरसत है !' कहकर कुछ विचार करके बोले : 'ऐसा ही करो अमरसींग; बाकी पैसे तुम भेज देना—मैं चला ही जाऊँ।'

'तो फिर मैं जल्दी से जल्दी आता हूँ उसको लेकर...थोड़ी-सी देर होगी, लेकिन काम बन ही जायेगा। तबतक अगर तुम्हें कुछ खरीदना हो तो तैयार रहना, जिससे...'

'अरे भैया, कुछ नहीं लेना है; तुम मुझे फारिग कर दो तो सब कुछ ले लिया !'

'भगवान चाहेगा तो जरूर काका...' कहकर अमरसिंह चला गया। रास्ते में भी उसके मन में यही प्रश्न उठता था कि—यह बुढ़ा किसलिये इतनी जल्दबाज़ी कर रहा है ?

मनोरदा भी ऊपर गये। एकाध बीड़ी फूँकर भमकू से कहा : 'चल बिठिया, जरा बजार में फिर आयें।'

'मैं तो नहीं आती काका, तुम फिर आओ।' कहकर भमकू ने सिर झुका लिया। वह सोचती होगी कि अभीहाल मनोरदा चिढ़-चिढ़ा उठेंगे, लेकिन उसकी धारणा ग़लत निकली। मनोरदा ने स्नेहभरे स्वर में कहा : 'अरे, तुम्हें छोड़कर मैं कैसे जाऊँ ? चल उठ, फिर गाड़ी का टे'म हो रहा है, घर नहीं चलेगी ? यहाँतक आये हैं तो कुछ ले तो लें !'

भमकू की जीभ नहीं लेकिन उसकी आँखें पूछ रही थीं : 'सच कहते हो काका ?'

‘चल उठ, मैं हँसी थोड़े ही कर रहा हूँ ! आज रात की गाड़ी में चल दें। उठ, हाथ-मुँह धो ले।’ मनोरदा ने कहा।

लपककर उठती हुई भूमकू को देखकर न जाने क्यों मनोरदा ने एक ठंडी साँस ली।

भूमकू ने साड़ी-लहंगे को झटककर बराबर किया और फिर लुटिया लेकर बोली : ‘तुम साफा बाँधो काका, मैं अभीहाल आती हूँ।’

‘मेरे लिये भी भर लाना।’

भूमकू ने हँसकर लुटियावाला हाथ हिलाते हुए लाड़भरे स्वर में कहा : ‘इसीलिये तो लुटिया ले जा रही हूँ।’ और एकदम चली गई।

मनोरदा अच्छीतरह जानते थे कि भूमकू में इतनी अधिक स्फूर्ति, आँखों में वही पुरानी चपलता और चहरे को खिला देनेवाला आनन्द क्यों आ गया है। दबाने पर भी फिर एक ठण्डी साँस निकल गई : ‘इसकी तकदीर में ही ऐसा लिखा होगा !’ बड़बड़ाकर सिर का साफा फिर से बाँधने की तैयारी कर रहे थे कि उसी समय भूमकू आ पहुँची। बोली : ‘लो, मुँह धोकर बाँधो, काका !’

‘अच्छी बात है, ला !’

और खाली लुटिया लेकर भूमकू फिर भरने को चल दी। मनोरदा ने बहुत कुछ कहा : ‘किसलिये परेशान होती है ? रास्ते में पी लूँगा !’ लेकिन फिर भी वह न मानी।

कोठरी बन्द करके दोनों जनों नीचे उतरे। रास्ते पर चलती हुई भूमकू के पैर, जीभ और आँखें—तीनों एक-सा काम कर रहे थे। मनोरदा को कईवार तो रास्ते पर नज़र रखने और अधिक न बोलने की सूचना देना पड़ती थी।

‘तुम्हें कुछ लेना है बिटिया ?’ मनोरदा ने पूछा।

‘जै...हुँ, मुझे तो कुछ नहीं लेना है, लेकिन तुम कुछ नहीं लोगे काका ?’

‘गाँठ में पैसे तो चाहिए बिटिया ? कुल चार रुपये हैं; दोनों का रेल-किराया भी मुश्किल से पूरा होगा।’

‘तो फिर बजार में क्या देखकर निकले ?’ कहकर भूमकू खिल-खिला उठी। एक दुकान पर नज़र पड़ते ही बोली : ‘काका, वह देखी कितनी अच्छी साड़ी है ! कल्लू भैया की बहू के लिये एक ले लो न ! काकी भी पहिन सकती हैं।’

‘लेकिन पैसे तो होना चाहिए, पगली !’ फिर कुछ रुककर बोले : ‘तुम्हें लेना है ? अगर तुम्हें लेना हो तो ले दूँ !’

‘कैसी बातें करते हो काका ! जब घरवालों के लिये पैसे नहीं हैं, तब मेरे लिये कहाँ से निकालोगे ? फिर मुँह चढ़ाकर बोली : ‘तुम नहीं लोगे तो मैं ले लूँगी !’

‘पैसे कहाँ से लायेगी ?’

लेकिन उससे पहले तो उन्होंने भूमकू को साड़ी के पल्ले की गाँठ खोलते देखा। वह कह रही थी : ‘साड़ी के ज्यादा से ज्यादा दो रुपये लगेंगे, फिर भी दो बचेंगे।’

‘तेरे पास कहाँ से...?’

‘मा’राज ने दिये थे काका !’ कहती हुई भूमकू दुकान की ओर मुड़ गई। मनोरदा ने उसे रोकते हुए कहा कि—‘घर इससमय साड़ी की जरूरत नहीं है; इतने पैसे अपने पास पड़े रहने दे !’

भूमकू वहाँ तो मान गई, लेकिन खिलौनों की दुकान आते ही वह फिर मचल गई : ‘नहीं काका, कल्लू भैया के बच्चे के लिये एक खिलौना जरूर लूँगी। एक अपने भैया के छोरे को भी लेना है।’ और मनोरदा के बड़बड़ाने पर ध्यान न देकर दो खिलौने लेकर ही रही।

‘चल चल, जल्दी !’ मनोरदा ने कुछ खिसियाकर कहा।

रास्तेभर भूमकू बोलती रही लेकिन मनोरदा तो चुप ही थे। जब धर्मशाला में पहुँचे उस समय सूरज अट्टालिकाओं के पीछे छिप गया था। भूमकू कोठरी में घुसते ही कपड़ों को तह करने लगी।

अपनी धोती की तह करते देखकर मनोरदा बोले :

‘क्या करती है बिटिया ? चल, पहले खा आयेँ । क्या जल्दी है, कपड़े तो आकर बाँध लेंगे ।’

‘मेरी तो भूख ही उड़ गई काका ! तुम जाकर खा आओ; फिर गाड़ी का टे’म हो जायेगा ।’ धोती की तह करते हुए भूमक ने कहा ।

‘गाड़ी तो आठ बजे जायेगी । चल इतनी देर में खा आयेँ । यहाँ की रबड़ी-पूड़ी का स्वाद तो चख ले !’

‘आँखों को सिकोड़ती और ललाट में बल पाड़ती हुई भूमक बोली : ‘लेकिन सच कहती हूँ काका, मुझे भूख नहीं है ! जाओ, तुम खा आओ ।’ और इस डर से कि मनोरदा अभीहाल भड़क उठेंगे—सिर झुका लिया ।

लेकिन धमकी के उस अमोघ शस्त्र का उपयोग न करके—शायद भूमक के साथ वह अन्तिम समय था इसलिये—मनोरदा ने कहा : ‘तो भाड़ में जाये, मुझे भी नहीं खाना है !’

आखिर भूमक को जाना ही पड़ा ।

सचमुच वह कुछ न खा सकी । जीवन में पहली ही बार रबड़ी मिली थी, लेकिन खुशी के मारे खा न पाई ।

हाथ धोकर बार-बार अपनी थाली की ओर देखती हुई भूमक से मनोरदा ने कहा : ‘अभी तो दो घंटे की देर है; झूठ हो तो मा’राज से पूछ ले ।’

न तो भूमक ने पूछा और न उसकी अधीरता कम हुई । दोनों जनेँ वापिस आये । मनोरदा दरवाज़े पर ही खड़े रहे । भूमक से कहा : ‘तू जा, मैं आता हूँ ।’

‘तो मैं पोटली बाँध लूँ, काका ?’

‘हाँ हाँ, जा ! सिर क्यों खाती है ?’

मनोरदा की अकुलाहटभरी आवाज़ सुनकर क्षणभर तो भूमक का हृदय रुक गया; लेकिन ‘यह तो मैं बार-बार पूछती हूँ इसलिये...’

इसतरह मन को समझाकर ऊपर चली गई ।

कुछ देर बाद भूमकू पोटली लेकर नीचे आई और बोली : 'लो चलो काका, सब सामान गिन-गिनकर बाँध लिया है !'

'लेकिन तुमसे यह अकलबन्दी करने को किसने कहा था ? जा ऊपर !' मनोरदा चिढ़ गये । उनकी आँखें फिर अमरसिंह के रास्ते पर मँडराने लगीं ।

भूमकू उसी ढीले स्वर में बोली : 'रात तो हो गई, अब चलो न !'

'यह लड़की कुछ समझती नहीं है और...' फिर आगे होकर बोले : 'चल चल ऊपर !'

'भूमकू दूटे पैरों पीछे लौटी । वह इसतरह सीढ़ियाँ चढ़ रही थी मानो सौत के मुँह में जा रही हो ।

मनोरदा अन्दर जाकर बैठ गये, लेकिन भूमकू पोटली रखकर बाहर खिड़की के पास खड़ी रही । कुछ देर बाद—शायद उसे गाड़ी की सीटी सुनाई दी इसीलिये—दरवाज़े में आकर खड़ी हो गई । डरते-डरते बोली : 'चलो न काका, टेसन पर बैठेंगे !'

'इसने तो जान खा ली ! न जाने मुझे कहाँ से कुबुद्धि सूझी जो इससे बात की !' कहकर भूमकू की ओर एक रूखी नज़र फेंकते हुए बोले : 'अभी से टेसन पर कौन तेरा बाप लड्डू रखकर बैठा है ?'

'फिर गाड़ी चली जायेगी तो ?' भूमकू रुआँसी आवाज़ में बोली ।

'चली जायेगी तो क्या सबेरे दूसरी नहीं मिलेगी ?'

रोते-रोते भूमकू मुश्किल से बोल सकी : 'मैं जान गई...ऐसा करके तुम मुझे फुसला रहे हो !' और फिर वह सिसकने लगी ।

'क्या तू मेरी फजैती कराना चाहती है ? यहाँ बैठकर रो जितना रोना हो !—सुनती है या नहीं ?'

भूमकू बिस्तर में लेट गई । मनोरदा ने किवाड़ लगा लिए और बोले : 'अब रो अपनी म'तारी को !'

और भूमकू भी फूट-फूटकर रोने लगी ।

‘चुप मर, नहीं तो गला दूंगा समझी...!’

भूमकू ने रोना दबाने की कोशिश तो की, लेकिन उसका सारा शरीर इस तरह काँपने-उछलने लगा मानो दबे हुए रुदन ने उत्पात मचा दिया हो । थोड़ी-थोड़ी देर में सिसकियाँ भी निकल रही थीं ।

मनोरदा बोले : ‘वहाँ घर किस बाप से मिलने के लिये इतनी उतावली हो रही है ? पैर रखने तक की तो जगह नहीं है !’

‘हो या न हो, पर मैं यहाँ नहीं रहूँगी !’ और फिर सिसकने लगी । कुछ देर बाद शान्त होकर मनोरदा की ओर दीनता से देखकर बोली : ‘काका, मुझे गाड़ी में अकेला बैठा देना; मैं...’

‘इतनी बहादुर है तो जा न ! काका की क्या जरूरत है ? पैसे तो हैं ही ।’ और भूमकू की ओर विचित्र ढंग से ताकते हुए बोले : ‘जा जा, उठ !’ भूमकू डरते-डरते कुछ सावधान हुई और सिसकियाँ भरते हुए पोटली को अपनी ओर खींचकर पूछा :

‘तो जाऊँ ?’

‘कहाँ...’ कहते हुए मनोरदा का शरीर तन गया और गरदन कुछुण की तरह लम्बी हो गई ! कुछ देर बाद दीवार से टिककर घुरके : ‘गला घोंट दूंगा समझी...’ फिर कुछ रुककर इसलरह बोले मानो स्वगत बोलते हों : ‘यहाँ पढ़ियाँ खाते हुए क्या जोर पढ़ता है जो वहाँ कुआँ पूरने चली !’

थोड़ी देर तक कोई कुछ न बोला । भूमकू भी आँसू बहा-बहाकर शान्त हो गई थी ।

मनोरदा उठे और बाहर जाकर एक आदमी से पूछा : ‘कितने बजे होंगे भैया ?’

‘सात ।’ मनोरदा कोठरी में घुसते हुए बोले : ‘साला यह घन्टा भी कितना लम्बा बनाया है !’

भूमकू पैरों के आसपास हाथ लपेटकर दाहिने घुटने पर गाल रखे अन्यमनस्क-सी बैठी थी । कभी टपकते और कभी रुकते हुए

आँसुओं की रेखाएँ बिजली के उजाले में चमक रही थीं। दबे हुए रुदन की आवाज़ वन्द मुँह से इसतरह निकलती थी मानो वह हिचकियाँ ले रही हो।

सामने बैठे हुए मनोरदा के मुँह की रेखाएँ संध्या के रँगों की भाँति क्षण-क्षण में बदलती थीं। कुछ देर बाद उन्होंने भ्रमकू से कहा : 'अब चुप हो जा, उठ, मुझे जरा पानी पिला।' उनकी आवाज़ में गुस्से की जगह स्नेह भरा था।

इस आवाज़ ने एकबार तो भ्रमकू को खूब रुला दिया, लेकिन तुरन्त मुँह साफ करती हुई और हिचकियों को दवाती हुई लुटिया लेकर बाहर निकल गई और पानी भर लाई।

मनोरदा ने उससे पास बैठने को कहा। खाली की हुई लुटिया बगल में रखते हुए बोले : 'देख पगली, तू जरा विचार तो कर ! मुझे क्या, मैं तो तुझे अभीहाल वापिस ले जाऊँ; लेकिन शहर में मजे से धूमना-फिरना, मौज से खाना, तरह-तरह के कपड़े पहिनना—यह सब तुझे वहाँ कहाँ से मिलेगा ? और सच्ची बात तो ये है कि तू जावर रहेगी वहाँ ? इस्का तो विचार कर ! मुझे क्या, मैं तो चलाँगा। मोटर से उतरने तक तो मेरा साथ...लेकिन फिर क्या करेगी ?'

भ्रमकू की आँखों से फिर आँसू की धाराएँ बहने लगीं थीं। बोली : 'फिर जहाँ जाना होगा वहाँ चली जाऊँगी !'

'उसी बामन के पास ?'

'नहीं...' और फिर मिसकियाँ भरने लगी।

'तो फिर यहाँ क्या बुरा है ? मुझे बतलायेगी ?' मनोरदा ने पूछा।

भ्रमकू के रुआँसे कंठ से निकलते हुए शब्द सुनाई दिये : 'यहाँ मेरा कौन धनीधोरी है...न माँ है, न भाई है !' मनोरदा की अकुलाहट और गुस्सा बढ़ रहा था। भ्रमकू सिसकती हुई आगे बोली : 'तुम हो, लेकिन तुम भी मुझे छोड़कर चले जाओगे...' और रुदन का महाभूत बहने लगा।

मनोरदा दौँत पीस रहे थे; आँखों में बढ़ती हुई गुस्से की आग मानो अभीहाल झमझू को भरस कर देगी। दो-चार क्षणतक धूरने के बाद एकदम खड़े हो गये और झमझू का हाथ पकड़कर पोटली की ओर खींचते हुए गरजे : 'ले उठा पोटली !' और डरते-डरते पोटली लेती हुई झमझू से कहा : 'लेकिन याद रखना ! अगर गाड़ी से न फेंक दूँ तो मेरा नाम बदल देना...समझी ?' झमझू उनकी भयंकर नज़र से बचते-बचते लुटिया उठाकर बोली : 'तुम्हारा साफा ?'

मनोरदा साफा हाथ में लेते हुए कह रहे थे : 'गाड़ी भी अच्छी रात की मिली है, याद रखना !' लेकिन झमझू तो उस समय जीने पर जाकर खड़ी हो गई थी।

X

X

X

मनोरदा जाते-जाते आफिस की खिड़की के पास खड़े हो गये और कारिन्दे से बोले : 'हम जा रहे हैं सा'ब, अपनी रजाइयाँ सँभाल लेना।' पीठ फेरने ही वाले थे कि कारिन्दे की आवाज सुनाई दी :

'क्यां पटेल, डिपॉज़िट का रुपया नहीं लोगे ?'

'दो तो मै'रबानी ! लेकिन गाड़ी का टे'स हो चुका है सा'ब ! आठ में कितनी देर है सा'ब ?'

'अभी तो बड़ी देर है। लो, यहाँ अँगूठा लगाओ !' कारिन्दे ने कहा।

मनोरदा को बातें करने, अँगूठा लगाने और रुपया लेने में थोड़ी-सी ही देर लगी थी, लेकिन इतने में तो दरवाज़े के बाहर खड़ी हुई झमझू के दिल में न जाने क्या से क्या हो गया था ! मशाल-सी जलती हुई वह दहशत दिल की धड़कनों में भी फेर-फार करती थी : 'ऐसा न हो कि फिर से बुढ़े का मगज फिर जाये !' और मनोरदा को आता देखकर धीरे-धीरे आगे खिसकने लगी। लम्बी-लम्बी डों भरते हुए मनोरदा आगे हो लिए और उनके क़दमों पर क़दम रखती हुई झमझू भी पीछे चलने लगी। मनोरदा ने अभी भी उससे लड़ना बन्द नहीं किया था। धीमे फिर भी

रोषभरे स्वर में कहा : 'अगर वहाँ जाकर जरा भी मुँह चलाया तो जवान खींच लूँगा !' झपकू बिना बोले-चाले चलती रही ।

टिकट कटा लेने के बाद मनोरदा का गुस्सा कुछ कम मालूम हुआ : 'ले चल, कुछ भूली तो नहीं ?'

पीछे चलती हुई झमकू ने मिर हिलाकर इन्कार किया, लेकिन शायद मनोरदा देख नहीं पाये होंगे इसलिये पीछे मुड़कर पूछा : 'एँ ?'

'नहीं, सब गिन-गिनकर बाँधा है ।'

'वे खिलौने ले लिए ?'

'हाँ ।' और कुछ रुककर बोली : 'लेकिन सिर पर साफा तो बाँध लो !'

बगल से साफा निकालते हुए मनोरदा बोले : 'हत्त तेरे की ! तब से किसने मुँह पकड़ रखा था ? ले पकड़, जरा मैं लपेट लूँ !' और खड़े हो गये ।

'चलो न, अब गाड़ी में ही बाँध लेना ।' और न जाने क्यों मनोरदा के मुँह पर हास्य थिरकने लगा ? बोले : 'तेरी माँ भाग नहीं जायेगी, ले पकड़, अभी तो बहुत देर है !' और साफा लपेट लिया ।

टिकट कटाने के बाद टिकट-चेकर की बतलाई हुई दिशा में झमकू मनोरदा से भी आगे चलने लगी । उसकी नज़र कभी इधर तो कभी उधर घूमती थी । उसे पहले ही डिब्बे में घुमता देखकर मनोरदा बोले : 'आगे चल, यहाँ तो भीड़ है ।'

और खुशी से फूली हुई झमकू : 'काका, यहाँ दो आदमियों की जगह तो है ।' कहती हुई, मनोरदा के ठेलों से आगे बढ़ती हुई बदली की तरह सरक रही थी । अभी भी उसे शंका हो रही थी— 'यह कोई स्वप्न तो नहीं है ? ऐसा न हो कि काका का मन पलट जाये !'

झमकू को सच्ची शांति तो तब हुई जब वह गाड़ी में बैठ गई । जब गाड़ी सीटी देकर 'छुक छुक' करती हुई चलने लगी तब तो उसके

मुँह और आँखों की दीप्ति देखकर मनोरदा से भी कहे बिना न रहा गया : 'हो गई न मन की ?'

भूमकू की आँखों में भरे हुए खुशी के आँसू खिर पड़े, और मनोरदा बगल में बैठे हुए एक मुसाफिर से बातें करने लगे कि उनकी बिटिया भूमकू अमदाबाद में आकर कितनी अकुला गई थी ! भूमकू खिड़की से दिखनेवालीं मिलाँ की काली-काली चिमनियाँ और चमकती हुई बत्तियाँ देख रही थी।

×

×

×

गाड़ी की मुसाफिरी भी पूरी हुई और स्टेशन के पासवाली धर्मशाला में रात भी। मोटर की वाट देखते-देखते दोपहर हो गया। मनोरदा को देखने से तो ऐसा लगता था मानो वे किसी गहरे विचार में हों, लेकिन भूमकू दो-तीन दिन से बहाए हुए आँसुओं की क्रीमत हँस-हँसकर वमूल कर रही थी। आखिर कब तक ? मोटर में बैठी और आधा रास्ता पूरा हुआ कि उसके मुँह की रँगतें बदलने लगीं। किमी जगह मोटर खड़ी होती और मनोरदा उससे खाने-पीने की या और कुछ पूछते तो वह पूरा जवाब भी नहीं दे पाती थी।

मोटर एक पहाड़ी पर चढ़ रही थी। बगल में मुँह रखकर बैठी हुई भूमकू को छह-सात कोस की दूरी पर खड़ा हुआ खांडा पहाड़ साफ-साफ दिख रहा था। उस पहाड़ की गोद में बसा हुआ अपना गाँव तो भूमकू को बिना दिखे भी दिखने लगा था। दूसरे ही क्षण उसकी आँखें डबडबा आईं और सबकुछ धुल गया।

मनोरदा भी किसी गहरी उलझन में पड़े थे। जब मोटर सीधी उनके गाँव को जानेवाली पगडंडी पार कर गई तब उन्हें ध्यान आया और मोटर रुकवाई। दोनों को उतारकर मोटर आगे चल दी।

'क्यों भूमकू, अब क्या विचार है ?' पूछते हुए मनोरदा कुछ मुस्कराये।

भूमकू के गुलाबी चहरे पर क्षणभर के लिये अममंजस के भाव झलक आये। न तो वह रो सकती थी, और न हँस ही सकती थी !

मनोरदा फिर बोले : 'कुछ से निकलकर खाई में पड़ी—इसमें क्या मिल गया ?' और कुछ तिरस्कार के साथ कहा : 'बहुत माँ-माँ भाई-भाई कर रही थी, अब देखता हूँ...'

भूमकू की आँखों से फिर आँसू बहने लगे। वह ज़मीन पर बैठ गई और साड़ी के पल्ले से झटपट आँखें पोंछकर पोटली खोलने लगी।

'पोटली किसलिये खोलती है ?'

'तुम्हारे कपड़े और दूसरी चीजें निकाल दूँ।'

'फिर कहाँ जायगी ?' पूछकर व्यंगभरी दृष्टि से देखते रहे। थोड़ी ही देर बाद कुछ गंभीर होकर पूछा : 'एँ ब्रिटिया, वह पट-वारी तुम्हें क्यों ले गया था, और फिर क्यों भगा दिया ?'

भूमकू को चुप देखकर फिर बोले : 'सुझ से बात तो कर, उसने तुम्हें निकाल क्यों दिया ?'

'उन्होंने कहाँ निकाला ?'

'तो क्या तू अपनेआप भाग आई ?'

भूमकू रोती आवाज़ में बोली : 'नहीं, उनके घरवालों ने निकाल दिया; वे तो घर ही नहीं थे !' और बहुत रोकने पर भी दबे हुए आँसू खिर ही पड़े।

'कहाँ गया था ?'

'कोई बुला ले गया था—वहाँ से फिर वापिस ही नहीं आये !' कहकर आँसू पोंछने लगी।

'तुम्हें भी अच्छी घर आने की सूझी !' *

भूमकू कुछ न बोली। शायद मनोरदा ने भी उसके उत्तर की आशा नहीं रखी होगी; या फिर ऐसा समझे हों कि—इस लड़की को जाति के कठोर दण्ड का पूरा पता नहीं होगा।

'चल उठ,' कहकर मानो किन्हीं विचारों का उत्तर देते हों इस्-

तरह बोले : 'एकबार तू यहाँ से चल तो सही, फिर देखा जायेगा।' कुछ रुककर कहा : 'चल चल, बाँध ले पोटली!' उनके मुँह पर कुछ हड़ निश्चय की रेखाएँ चमक रही थीं।

मनोरदा आगे और झमकू पीछे-पीछे चलने लगी। डूबते हुए सूरज की रोशनी में उस गाँव को बायीं तरफ छोड़कर दोनों दायीं ओर धीमी चाल से चले जा रहे थे।

थोड़ा-सा रास्ता तय करने के बाद मनोरदा ने झमकू को कुछ समझाया। कोई पूछे कि कहाँ गई थी? मनोरदाका कहाँ मिल गये? वगैरह के जवाब भी सिखला दिये। थोड़ी देर बाद—शायद खुद को अकुला देनेवाला प्रश्न होगा—पूछा : 'क्यों बिटिया, अगर मोटर से उतरने के बाद मैंने तुझे अकेला छोड़ दिया होता, तो तू कहाँ जाती?'

'कौन जाने काका!' ठंडी साँस भरते हुए झमकू बोली।

'फिर भी? अब अगर मैं चला जाऊँ तो?' कहकर झमकू की ओर देखा। उन्होंने आशा रखी होगी कि झमकू डर जायेगी; लेकिन ऐसा कुछ न लगा। उसने भी उदासभाव से उत्तर दिया :

'मा'राज के पास जाऊँगी...दूसरा कौन है?'

दो-चार क्षण बाद मनोरदा मानो अपने ही विचारों का उत्तर दे रहे हों इसतरह बोले : 'मा'राज बेचारे क्या कर सकते हैं!'

एक का हृदय अगाध शोक में और दूसरे का गूढ़ विचारों में—इसतरह डूब रहा था कि आसपास की भाड़ियों में होने वाली खर-खराहट, सियारों की हुवाँ हुवाँ, घनघोर रात्रि देखकर मस्त हुए उल्लुओं की धू-धू और कभी-कभी सिर पर से उड़ते हुए किसी पक्षी की टीं-टीं—कोई भी आवाज़ उनके कानों तक नहीं पहुँचती थी।

अब झमकू को अपने परिचित वृत्त दिखने लगे थे; लेकिन उन्हें छोड़ते समय जितना दुःख हुआ था, उतना तो क्या उसका एक अंशमात्र भी आनन्द पुनः मिलने से नहीं हो रहा था।

जबड़बाबड़ ज़मीन होने से मनोरदा ने आँखें फाड़-फाड़कर देखा, लेकिन निश्चित स्थान पर अग्नि का नाम-निशान भी न था। देखा

तो धूनी ठंडी पड़ी थी; मन्दिर सुनसान था। बिना कहे-सुने ही दोनों जनों समझ गये कि महाराज नहीं हैं; कहीं बाहर गये होंगे।

बीड़ी सुलगाकर लोटते हुए मनोरदा नर्मी से बोले : 'बिटिया ! तुझ जैसी बदकिस्मत तो मैंने एक भी नहीं देखी !' और कुछ देर बाद बोले : 'अब चुप हो जा, रोती क्यों है ? मा'राज नहीं हैं तो कोई बात नहीं, मैं तो हूँ ! और मा'राज हांते तो भी बेचारे क्या करते ? हाँ, दो दिन आराम से रखते जरूर, लेकिन दूसरी भूँभटें तो मुझे ही सुलझाना पड़तीं।'।

थोड़ी देर चुप रहने के बाद बीड़ी के ठँठे को एक ओर फेंकते हुए मनोरदा तनकर बैठ गये और मन में कोई विचार बराबर जम गया हो इस तरह बोले : 'अरी पगली, ऐसी तो कई गुथियाँ इस मनोरकाका ने सुलझा दी हैं; वे मेरे सामने क्या पंचा'त करेंगे ! चल उठ, खड़ी हो जा।' और दोनों जनों उठकर गाँव की ओर चल दिये।

मनोरदा की उस बात ने, जगमगाते हुए तारों के धुंधले प्रकाश में दिखाई देने वाले उनके तने हुए शरीर ने झमकू को कुछ ढाढ़स बँधाया।

वे ही बारियाँ, वे ही खेत, वैसी ही आवाज़ें और दूर दूर जलते अलावों को पार करके उस महुए के नीचे आकर रुक गये।

'यहाँ बैठना बिटिया ! मैं अभीहाल तेरी माँ को भेजता हूँ। अगर कोई नहीं आयगा तो फिर मैं खुद ही आऊँगा।' और कुछ ढाढ़स बँधाकर चल दिये।

×

×

×

गाँव में सन्नाटा छा गया था। उनींदे कुत्ते भी भूँकने के बदले कुँऊँ...कुँऊँ करके चुप हो जाते थे।

मनोरदा बेचर का छेंका खोलकर चौपाल में आये और चुपके से उसे जगाया।

'ओ हो हो ! कौन, मनोरकाका तुम ? इस बखत कहाँ से ?'

कहता हुआ बेचर आँखें मसलकर खड़ा हो गया। बैठने को कहकर पूछा : 'हुक्का नहीं लाये ?'

'भाड़ में गया तेरा हुक्का !'

इतने में फ़िवाड़ खुले और बेचर की माँ बाहर आई। ताज्जुब में आकर कहने लगी : 'कौन, मनोर लाला ? कब आये ? अभी थोड़ी ही देर पहले तो मैं...तुम्हारे...'

'मैं तो सीधा चला आ रहा हूँ; घर में तो सब राजी-खुशी है न ?'

'सब अच्छे हैं; थोड़ी देर पहले ही वहाँ से आई हूँ।' फिर कुछ अचककर पूछा : 'एँ मनोर लाला, वह कल मुँही...'

मनोरदा बिगड़ उठे : 'चूल्हे में गये तुम्हारे मनोर लाला ! मुझ से क्या पूछती हो ? पूछो न अपने लड़के से ! बहिन की खबर लेने तो गया होगा ?'

'लेकिन काका, तुम्हीं तो...'

मनोरदा बीच में ही झुल्ला उठे : 'बैठ बैठ, आया बड़ा हुशियार का बेटा !' और कुछ ठंडे होकर बोले : 'अरे पगले ! बे'न के लिये तो लोग झूरते हैं झूरते !'

'अरे लाला ! मैंने तो बहुत कहा कि तू जरा तलाश तो कर...'

मनोरदा बीच में ही बोले : 'और तेरी बे'न ने ऐसा क्या पाप कर डाला है ? तू कहता हो तो तेरी जात में एक-एक का कान पकड़कर कहला दूँ कि कौन कितने में है...'

'ठीक है काका, लेकिन जब सारी जात ही पीछे पड़ गई हो...'

'तुझ में पानी होता तो कैसे पीछे पड़ जाती ?' फिर कुछ रुककर बोले : 'कहावत नहीं है कि—दबौ बानियाँ देत उधार ! अरे, जरा दबाना भी आना चाहिये !'

माता की अधीरता शायद बढ़ गई होगी; पूछने लगी : 'लेकिन इससमय वह है कहाँ, मनोर लाला ?'

'वह तो बैठी है उस महुए के नीचे। जाओ, जाकर ले आओ, बेचारी जाड़े में ठिठुरती होगी !'

‘लेकिन इतने दिनों तक कहाँ थी ?’ बेचर ने पूछा। जमना को बात सुनने के लिये खड़ा देखकर मनोरदा को विश्वास हो गया कि उन बचन के पक्के महाराज ने आजतक कहीं बात भी नहीं चलाई है। उन्हें एक प्रकार का संतोष हुआ। बोले : ‘मसान में थी ! यह तो कहता नहीं कि काम पड़ने से दीवान सा’ब के पास जाना पड़ा और मुझे रास्ते में मिल गई; नहीं तो अभीतक तेरी बे’न बैठी होती किसी मियाँ के घर !’ कुछ रुककर बोले : ‘उस दिन जब महुए के नीचे नहीं मिली तब मुझे विश्वास हो गया था कि जरूर किसी नदी-कुएँ में जा गिरी है; कमबख्त ने ऐसा भी किया होता तो अच्छा था !’ फिर साँस लेने को रुके और बोले :

‘याँ कहो कि लौट आई और इतने से ही भगवान ने तेरे बाप की इज्जत बचा ली; नहीं तो तेरी तो क्या, सारे गाँव की और सारी जात की नाक कट जाती !’ और जमना से कहा : ‘लो जाओ, ले आओ उसे।’ फिर खड़े होकर बेचर से कहने लगे : ‘देख बेचरिया, अभी बात छिपी रहे तो ठीक है; कल तक तो कहीं—तेरी जात में ही—ठिकाना कर दूँगा।’ और फिर धीरे-से बोले : ‘अरे पागल ! अगर अकल न हो तो किसी से ले लेना चाहिए; मुझ जैसा कौन निठला होगा जो घर का काम बिगाड़कर तेरे पास दौड़ा आयेगा !’ कहकर चलने लगे।

‘लेकिन काका, जब मामला हाथ में लिया है, तो इसे सुलझा ही देना !’ कहता हुआ बेचर भी उठ खड़ा हुआ। साथ-साथ चलते हुए बोला : ‘अगर मेरी बे’न को कहीं ठिकाने लगा दो, तो मैं भी पगड़ी...’

मनोरदा कुछ हँसकर बोले : ‘यह तो मैं सब जानता हूँ; अब तो तू पगड़ी भी देगा और दुसाला भी; लेकिन पहले कुछ न सूझा ? अच्छा जा, आराम से सो, भगवान मालिक हैं।’ कहकर घर की ओर चल दिये।

जमना चुपके-से झमकू कां लेकर घर आ गई। यह सब जानते-समझते हुए भी बेचर की बहू ने की चीं-चपड़ तक न की।

लेकिन ज्यों-ज्यों मनोरदा घर की ओर डगें भर रहे थे त्यों-त्यों उनकी बेचैनी बढ़ रही थी। मन में शायद यह भी सोच रहे होंगे कि—कहाँ से कुबुद्धि सूझी जो मैंने यह धंधा किया...और जब किया ही था, तब पूरा होता तो ठीक था; लेकिन यह तो 'लेने गई पूत और खो आई खसम' जैसा हाल हुआ !' खुद अपने को ही हिसाब गिनकर बतलाया : 'गहना छुड़ाने की बात तो दूर रही, यह तो उल्टी पच्चीसभर चाँदी खो दी !'

काफी देरतक दरवाज़ा खटखटाने के बाद घरवाली की आवाज़ आई : 'कौन है इतनी रात को ?'

मनोरदा का दाक्य 'यह तो मैं हूँ' पूरा भी न हो पाया कि दरवाज़ा खुल गया। घरवाली ने पूछा : 'आधी रात को कहाँ से...?' और दीया जलाने लगी।

मनोरदा ने कोई उत्तर न दिया। चार दिन से सूनी पड़ी हुई खूँटी पर साफा टाँगा, कमरी एक ओर रख दी और अँगरखा उतारकर हाथ-मुँह धोने के लिये लोटे में पानी भरकर बाहर निकले। धोती के छोर से मुँह पोंछते हुए घर में आये और पूछा : 'है कुछ खाने को ?'

'रोटियाँ हैं जुआर की। मुझे क्या खबर थी कि तुम इतनी रात को आओगे; नहीं तो बैलों को कढ़ी न पिलाती !'

'ठीक ! जुआर की है तो वही सही ! अब तो दूध भी कहाँ से बचा होगा !'

'क्या देखकर बोलते होंगे ?...पूछते लाज भी नहीं आती !' बढ़-बढ़ाती हुई रसोई-घर में गई और रोटियाँ लाकर बाहर के चूल्हे से अंगारे निकाल कर गर्म कीं; ऊपर थोड़ा घी और लहसुन की चटनी भी रख दी।

अभी तो मनोरदा आधा भी नहीं खा पाये थे कि घरवाली ने

पूछा : 'क्या कर आये ?'

'कर क्या आये, तू पीछे पड़ी थी इसलिये हो आया, और क्या !' कहकर सिर झुकाए खाते रहे। कुछ देरतक चुप रहने के बाद घरवाली से पूछे बिना न रहा गया :

'कितने मिले ?'

'बहुत सारे !'

'फिर भी ?'

मनोरदा ने हाथ धोते-धोते घरवाली की ओर देखकर गंभीरता से कहा : 'इसकी कोई कीमत होती है, पगली !' और हँसकर बोले : 'ले उठ, जरा तमाखू ला; मैं तो हुक्का पिये बिना तड़फड़ा गया !' कहकर हुक्के में पानी डालने बाहर निकले।

तमाखू लेकर लौटी हुई घरवाली का धैर्य टूट गया; वह मनोरदा के अँगरखे के जेब टटोलने लगी। उनमें से थोड़ी-सी बीड़ियाँ, माचिस और एकाध रुपये की चिल्लर निकली। साफा उकेलकर भी देखा—शायद किसी छोर में गहनें बँधे होंगे इस आशा से—लेकिन चारों कोने खाली ! यह देखकर मनोरदा ने पूछा :

'साफा क्यों उकेल रही है ?'

'यों ही—मैंने सोचा कुछ हो तो ठिकाने...'

मनोरदा हँसकर बोले : 'साली औरत की जात ! धीरज का तो नाम नहीं !' और हुक्का भरने लगे। होंठों पर उँगली रखकर बोलती हुई घरवाली से कहा : 'पूरी बात तो सुन लेती; पूछना तो चाहिए था कि कहाँ-कहाँ गये थे, क्या-क्या कर आये, लेकिन ये तो लगी एकदम...'

'किस दिन तुमने पूरी बात की और मैंने नहीं सुनी ? और कपड़े सिकोड़कर सामने बैठ गई। कहा : 'लो बोलो।' अच्छों-अच्छों को टरकाने वाले मनोरदा को इस समय सामने बैठी हुई घरवाली यम-सी लग रही थी। आज उसे समझाना कठिन हो गया था।

दोनों घुटनों के बीच हुक्का रखकर गुड़गुड़ाते हुए दीवार से टिककर बैठ गये और मुस्कराने लगे ।

‘बोलो न, क्या कर आये ?’ घरवाली ने फिर पूछा ।

‘खाक कर आये ! खोदा पहाड़ और निकली चुहिया, दूसरा क्या ?’ कहकर फिर शान्ति से हुक्का गुड़गुड़ाने लगे । उनके मुँह पर खेलती हुई मुस्कराहट देखकर ही शायद घरवाली को गुस्सा नहीं आया होगा, फिर भी कुछ अकुलाकर बोली :

‘अमदाबाद गये थे या नहीं ? साफ-साफ बात तो करो जिससे कुछ समझ में आये !’ और चुप होकर फिर पूछने लगी : ‘या फिर वह शंखिनी कहीं भाग गई ?’

‘भाग गई होती तो भी अच्छा था !’ मनोरदा ने कुछ उदास-भाव से कहा ।

घरवाली के धैर्य का बाँध टूट गया : ‘आग लगे तुम्हारी आदत में ! सीधी बात भी नहीं करते !’ और मुँह मटकाकर घी का बंटा लेकर खड़ी हो गई ।

शायद मनोरदा के मन की हो गई होगी—घरवाली के गुस्से को समझे ही न हों इसतरह बोले : ‘ठीक, जरा चौपाल में खटिया डाल दे; आराम से सो तो लूँ !’ और आई हुई जम्हाई को हो सके उतना लम्बाकर—‘हो...हा...हा...हा...!’ करते हुए बोले : ‘आँखें भी नहीं खुलतीं !’ और वास्तव में उनकी आँखों की पलकें किसी भार से मुँदी जा रही थीं ।

यह जानना तो कठिन था कि मनोरदा के यह सब अभिनय सच्चे थे या झूठे; लेकिन यह सच था कि भूमकू को वापिस ले आने के ‘अशुभ’ समाचार वे हो सके उतनी देर से सुनाना चाहते थे; क्योंकि इसके लिये तो पूर्ण स्वस्थता और कम से कम आधे दिन के समय की आवश्यकता थी । इतना करने पर भी घरवाली मानेगी या नहीं—यह एक जटिल प्रश्न था । अगर धुन सवार हो गई और भगदना शुरू कर दिया तो भूमकू को ठिकाने लगाने का मामला

और भी उलझ जायेगा ।

घरवाली ने झुंझलाकर—‘गये थे बड़ी कमाई करने ! आधी रात को क्या झुंझ मारने आये ? कहीं और पड़े रहते !’—इसतरह बढ़-बढ़ाते हुए बाहर खटिया बिछाकर अलाव में आग जला दी ।

मनोरदा ने सोचा कि—लकड़ियों को पछाड़-पछाड़कर गुस्सा बढ़ाती हुई घरवाली अभी भी पीछा नहीं छोड़ेगी—अगर छोड़ भी दिया तो रातभर सोएगी नहीं और सवेरे ढोरों पर आफत आयेगी ! रजाई ओढ़ते हुए बोले : ‘सवेरे उठकर धामन को मीठा देना कि सहीसलामत—इज्जत से घर आ गया !’

‘नहीं तो ?’

‘नहीं तो अभीतक अँधेरी कोठरी में बैठा-बैठा चने चबा रहा होता ।’ मनोरदा ने बात को उलझाना शुरू किया

घरवाली भी इसतरह ठंडी पड़ गई मानो किसी ने बरफ में डुबो दिया हो । पूछने लगी : ‘आखिर हुआ क्या ? कुछ बात भी...’

‘बात तो कहूँगा ही...लेकिन अभी तो इतना ही बस है । ठीक-ठाक होने दे, फिर सब कहूँगा आराम से !’

और मनोरदा जैसा चाहते थे वैसा ही परिणाम आया । घरवाली ने घबराए हुए स्वर में पूछा : ‘क्या अभी भी कोई डर है ?’

मनोरदा ने धैर्य बँधाया : ‘ऐसा कुछ नहीं है, फिर भी चेतता रहना अच्छा । और बात तो तेरे सिवा कहना ही किससे है ?’

चूँकि इससे घरवाली को कुछ शांति तो मिली, लेकिन साथ ही साथ उलझन में भी पड़ गई । अधिक स्पष्टता के लिये कुछ पूछना ही चाहती थी कि मनोरदा ने फिर वैसी ही लम्बी जम्हाई ली और बोले : ‘जा, सो जा, जरा रजाई को पैरों के नीचे दबाती जाना ।’

अगर घरवाली उलझन में न पड़ी होती तो रजाई दबाते समय बोले बिना न रहती : ‘तुम से इतना भी नहीं होता ?’

घर के किवाड़ बन्द होने की आवाज़ सुनकर मनोरदा को इतना

तो संतोष हुआ कि—जरा झमकू का ठिकाना पड़ जाने दे, फिर तो मैं तुझ से निपट लूँगा ! लेकिन इस संतोष के बाद सोने के बिह्व दिखाई नहीं देते थे । झमकू का प्रश्न सिर पर आफत की तरह मँडरा रहा था; उसे हल किये बिना नौद कैसे आती ?

मनोरदा की घरवाली भी शायद सो गई होगी ! गाँव और गलियारा सब सुनसान था, कभी-कभी जाड़े में ठिठुरते हुए किसी कुत्ते की कुनमुनाहट या खेतों से किसी रखवाले की हाँक सुनाई देती थी; लेकिन वह भी बहती हुई रात की नीरवता में कहीं विलीन हो जाती थी ।

‘ओ हो हो हो...! मैं भी घर छोड़कर जंगल में भटकने गया था !’ वड़वड़ाते हुए मनोरदा किसी आंतरिक अवर्णनीय आनन्द की गरिमा से बाहर की ठंड भूल गये हों इसतरह रजाई पैरों की ओर सिकोड़कर खटिया में बैठ गये । पैर नीचे लटका लिये और राख की ओढ़नी ओढ़कर पड़ी हुई अग्नि पर हाथ रखते हुए किसी गहरे विचार में पड़ गये ।

जब हुक्का भरने उठे उस समय अलाव के उजाले में दिखने वाले चहरे के भाव ऐसे थे मानों कोई कठिन कार्य पूरा करके संतोष का अनुभव कर रहे हों ! हुक्का भी उसी शांति से पिया । फिर रजाई ओढ़ते हुए बोले : ‘सब बराबर है—अब तो झख मारेगी !’ और कुछ ही देर में नकुए बोलने लगे : घर्रर...हैं ! घर्रर...हैं !

X

X

X

सवेरे जब मनोरदा चबूतरे पर बैठकर दतौन कर रहे थे उस-समय प्यार की मस्ती से भरपूर जीवन का आनन्द उठाते हुए कबूतर सामनेवाले मकान की मुँडेर पर बैठकर ठंड उड़ा रहे थे !

गाँवों में अभी भी चाय व्यसन नहीं बनी थी; हाँ, कभी-कभी शौक के खातिर ज़रूर बनाई जाती थी । मनोरदा को आज शौक करने की इच्छा हुई । दिवाली के मौके पर खरीदी हुई आधे रतल की पुड़िया अभी चल रही थी । चाय में शक्कर ही होना चाहिये

ऐसा कोई नियम नहीं था इसलिये गुड़ से भी काम चल जाता था। और चाय की पुड़िया तो बारह महीने के खर्च का हिसाब लगाकर ही लाई गई थी। रही दूध की कमी, सो घर पर गाय-भैंस होने से किसी के घर माँगने नहीं जाना पड़ता था। कल्लू अभी खेत से नहीं आया था और हलवाहा तो बेचारा खेत पर ही पड़ा रहता था; इसलिये मनोरदा को खुद ही तपेली चढ़ाना पड़ी। चाय में डालने के लिये अदरक कुचल रहे थे कि इतने में वीरा और एक पड़ौसी आ पहुँचा। वीरा ने चाय का 'चार्ज' सम्हाल लिया। छानते-छानते तो दूसरे भी दो आदमी आ पहुँचे।

कटोरियों में चाय भरते-भरते वीरा ने कहा : 'चाय भी खूब भीड़ लगाती है, मनोरभैया !'

'यह तो अच्छा ही है वीरा, कहाँ है भीड़ ?' कहकर हुक्का साफ करते-करते बोले : 'कटोरी की जगह आधी कटोरी पियेंगे।'

चाय इतनी लिज्जत से—सुडक-सुडककर पिई जा रही थी कि रास्ते से गुजरने वाला आदमी बिना देखे ही समझ ले कि मनोरदाका के घर चाय बनी है।

किसी के आग्रह के वश न होकर मनोरदा ने निग्य-नियमानुसार खुद ही चिलम का खजाना साफ करके कंकड़ डाला और तमाखू भरकर हुक्का तैयार किया।

तमाखू जल गई और फिर से हुक्का भरा गया, लेकिन किसी ने उठने का नाम नहीं लिया। मनोरदा ने स्कूल सम्बन्धी प्रश्नों के योग्य उत्तर देकर गाँव की बातें निकालीं। आखिर उन्हें कहना ही पड़ा—अपने पड़ौसी जवान से बोले : 'शंकरिया, जरा अपना हुक्का तो ले आ, मुझे गाँव में...' लेकिन 'जाना है' कहने से पहले ही वीरा बोल उठा : 'अरे, हमें कहाँ फुरसत है ! हम भी कुछ अपना कामकाज देखेंगे।'

मनोरदा ने बैठने का आग्रह किया; दो-चार चिलम तमाखू भी अलाव के पास रख दी लेकिन कोई न बैठा। मनोरदा ने भी कमरी

ओढ़ी और हुक्का लेकर निकल पड़े।

फिरते-फिरते अम्बा बड़हन के घर आ पहुँचे।

अम्बा ने 'आओ लाला !' कहकर मनोरदा का स्वागत किया और अलाव के पास बैठकर कुछ बनाते हुए मोती से कहा : 'अभी रहने दे, पहले काका का हुक्का भर दे !'

दोरों को छोड़कर आँगन में से गोबर भरती हुई अम्बा से मनोरदा ने कहा : 'अम्बा भाभी ! क्या तुम्हारे करम में यह गोबर-कूड़ा ही लिखा है ?'

आश्चर्य की बात तो यह है कि अम्बा ने कोई उत्तर न दिया। मुँह पर कुछ गमगीनी भी छा गई। एक ठंडी साँस लेकर बोली : 'चल मोती, उठवा दे यह डलिया।' और डलिया लेकर घर में होती हुई बाड़े में निकल गई। हाथ भी आँगन में न धोकर वहीं बाड़े में धो लिये और जल्दी से दतौन करके पानी का घड़ा लेकर बाहर निकली।

मनोरदा ने कहा : 'क्या नाराज हो गईं भाभी ! बैठो तो सही, मुझे तुम से कुछ बातें करना हैं।' फिर मोती की ओर देखकर बोले : 'क्यों रे सुतियाँ, तुम से दो घड़ा पानी भी नहीं भरा जाता ?' इतनी ठंड में बेचारी बुढ़िया कितना काम करेगी !'

मोती खड़ा होकर बोला : 'माने तब न काका ?' कहता हुआ माँ की ओर मुड़ा और कहा : 'ला, मैं भर लाऊँ, खेत भी देखता आऊँ।'

'ले, तू जा !' 'तू' शब्द पर भार देते हुए अम्बा ने कहा और पानी का घड़ा मोती को पकड़ा दिया। आँगन में बँधे हुए बछड़े को खोलकर घर में बन्द कर दिया और फिर मनोरदा के पास आ बैठी।

मनोरदा ने फिर वही प्रश्न किया : 'अपनेआप क्यों दुःखी हो रही हो—आखिर विचार क्या है ?' कुछ बताओ तो !'

'क्या देखकर पूछते हो !' अम्बा ने ज़रा नाराज़ होकर कहा।

‘तुम तो ऐसी बातें करते हो जैसे मुझे यह बेगार अच्छी लगती हो !’

‘तो फिर और क्या ?’ कहकर अपनी ओर गुस्से में तिरछी नज़र से देखती हुई अम्बा की परवाह न करके बोले : ‘यह तो ठीक है कि इस समय तुम्हारे हाथ-पाँव चलते हैं; लेकिन दो वर्ष बाद यह सब कौन संभालेगा ? क्या तुम जिन्दगीभर मोती का साथ दे सकोगी ?’

‘सिर पर पड़ेगी तब भ्रूज मारकर करेगा—मरने के बाद मैं थोड़े ही देखने आऊँगी ?’

मनोरदा उदास होकर बोले : ‘तुम्हीं ने ऐसी बातें कर-करके काम बिगाड़ा है, नहीं तो...’

‘चुपचाप बैठे रहो !’ कहकर अम्बा ने सिर झुका लिया और बोली : ‘नहीं तो मेरे मुँह से कुछ निकल जायेगा !’ फिर मनोरदा की ओर देखकर पूछा : ‘मैंने क्या करके बिगाड़ा है, बोली ! जो देखो वही मुझ पर टूट पड़ता है !’

अम्बा की नाराज़ी की परवाह किये बिना मनोरदा बोले : ‘तुमने नहीं तो क्या मैंने बिगाड़ा है ?’ और कुछ रुककर कहा : ‘छगना की बिटिया को—यह तो राँड ऐसी है और वैसी है—कह-कहकर खो दिया, और चीखली वाले हिरिया की बे'न का भी—सात पीढ़ी में कोई नहीं जानता था ऐसा बैर ढूँढ़कर बैठ गई !’ कहकर कुछ नीचे झुकते हुए बोले : ‘इसतरह दूध में कीड़े निकालती हो; अब तुम्हीं कहो, कौन तुम्हारे दरवाज़े पर आये ?’

‘नहीं आयेंगे तो जाने दो होली में !’ कहकर कुछ रुकी और शांत होकर बोली : ‘मैं तो अपने लड़के को एकबार अच्छीतरह ब्याह चुकी हूँ !’ कहकर ज़ोर से साँस ली और बोली : ‘लेकिन भगवान को कुछ और ही करना था ! उसकी तकदीर में होगी तो दूसरी मिल जायगी, नहीं तो...’

‘इसतरह तो खूब मिल गई !’ मनोरदा का चहरा कुछ सख्त हो गया । अम्बा कुछ बोलने ही वाली थी कि उसे रोककर बोले :

‘तुम्हारे इन बोलों ने ही तो सबकुछ बिगाड़ा है। मेरा जैसा कोई बात लाये भी तो कैसे लाये !’

‘कोई कुछ नहीं लाता;’ उदास होकर अम्बा ने कहा। ‘सब को देख लिया ! सब मीठी-मीठी बातें बनाते हैं !’

मनोरदा तनकर बोले : ‘ऐसा ! देखना है ?’ और कुछ रुककर कहा : ‘तो आज रात में ही मुत्तियाँ को लुगाई करा दूँ; है मंजूर ?’

चतुर अम्बा शायद समझ गई होगी। गहरी हँसी हँसकर बोली : ‘होगी कोई जिसका कहीं ठौर-ठिकाना न होगा !’

मनोरदा अम्बा की ओर देखते हुए कुछ हँसे और बोले : ‘जिस को किसी पर विश्वास ही न हो उसे क्या किया जाये !’ और फिर उसे चुप देखकर बोले : ‘मुत्तियाँ तुझे जितना प्यारा है, उतना नहीं तो उससे कम—लेकिन मुझे भी प्यारा होगा, अम्बा ! तुझे भले ही ऐसा लगता हो कि मैं सब भूल गया हूँ—लेकिन...!’ मनोरदा के इस ‘तू’ संबोधन में, गोल-गोल बातों में और अन्तर की गहराई में से निकलनेवाली आवाज़ में भूतकाल का कोई गूढ़ार्थ भरा हो ऐसा लगता था।

एक ठंडी साँस लेकर अम्बा ने कहा : ‘इसीलिये तो मुत्तियाँ की इतनी फिकर रखते हो !’

मनोरदा यह कटाक्ष समझ गये। बोले : ‘इच्छा तो बहुत होती है, लेकिन कब्जा तो नहीं किया जा सकता ?’ कहकर कुछ मुस्कराये।

अपनी ओर देखती हुई अम्बा की तिरछी आँखों में मनोरदा ने कुछ देखा और पहिचाना। उन आँखों में मीठा-मीठा उलहना था। शर्म की गहरी बदली में कुछ-कुछ मस्ती का झिड़काव भी दिखाई देता था। मनोरदा की आँखों में उनकी परछाई उतर आई; लेकिन दूसरे ही क्षण, इसतरह ठंडी साँसें निकल गईं मानो नीचे ढलती हुई चारों आँखों से ही निकली हों।

इतने में मोती पानी की खेप लेकर आ पहुँचा और माता से पूछकर फिर घड़ा लेकर चला गया। मनोरदा ने भी झुक्का एक तरफ

सरका दिया ।

अम्बा के साथ 'तू-तुकार' में ही बात करने लगे : 'तू समझ तो गई होगी कि मैं भूमकू की बात कर रहा हूँ । लेकिन यह मत समझना कि मैं किसी के भेजने से आया हूँ । उस बेचारी का ऐसा है ही कौन जो मुझे भेजता ? भाई-भौजाई को तो तू जानती ही है; और माँ बेचारी को तो रहने के लाले पड़ रहे हैं !'

अम्बा का चहरा फिर बदल गया । व्यंग में बोली : 'ऐसा कहो कि कोई नहीं मिला इसलिये मुतियाँ याद आया !'

मनोरदा का चहरा भी ज़रा सख्त हुआ : 'तू यह मत समझना कि मनोर मुखिया ढूँढ़ने निकलें और कोई न मिले ! इससे पहले क्या हिरिया की बे'न को ठिकाने नहीं लगा दिया ?' कुछ रुककर : 'और तुम्हारे इसी डर से तो आने का मन नहीं होता । सोचा कि तुम लाख कोशिशें करोगी, फिर भी ऐसी लड़की नहीं मिलेगी; जरा देखूँ मुतियाँ की किस्मत जोर मारती है या नहीं; और चला आया । ऐसी छोरी को ठिकाने लगाना कोई मुश्किल बात नहीं है । तुम कहो तो गिनकर बतला दूँ !' कहकर उन्होंने अलग-अलग गाँवों के दो-चार मोती जैसे बड़इयों के नाम बतला दिये और पूछा : 'तुम्हीं बतलाओ, इनमें से कौन-सा बड़ई इन्कार करेगा ?'

अम्बा को विचार में पड़ा देखकर फिर बोले : 'सच कहता हूँ अम्बा भाभी ! ऐसी अच्छी लड़की दूसरी नहीं मिलेगी !'

'अच्छी थी इसीलिये तो राँड ने दुनिया को तमाशा बताया !'

'इसीलिये नहीं, लेकिन ऐसा कहो कि बेचारी बातों में आ गई ! अगर उसका धनी अच्छा होता तो क्यों बेचारी की ऐसी फजैती होती ? ससुराल में घरवाला जरा-सी बात में मार-मारकर चमड़ी उधेड़ देता था; और पीहर में देखो तो कुलच्छन भौजाई मिली । इस-तरह बेचारी चारों ओर से परेशान हो उठी और उसी समय उस पटवारी से आँखें लड़ गई—भाता था और वैद ने बताया,—फिर तो भाग ही जाये न !' और फिर मनोरदा ने लगभग सारे बड़इयों के घरों

के कलंकों की पोथी पढ डाली। बोले :

‘अम्बा भाभी ! यह तो धरतीमाता भर्ली, जो सभी को चलने देती हैं !’ कुछ रुककर कहा : ‘क्या तुम में और क्या हम में—अपनी जातों में तो ऐसी बातों में हलकापन माना ही नहीं जाता !’

‘लेकिन वह है कहाँ ?’

‘तुम्हें इससे क्या ? वह बैठी है मेरे घर में। यह तो समय की बात है कि मैं मिल गया, नहीं तो अभी तक किसी मुसलमान के घर में होती !’ कहकर सामने ताकती हुई अम्बा को अचम्भे में डाल दिया। उसने कुछ सवाल पूछे जिनके जवाब भी खूबी से दिये और फिर विचार में पड़ा देखकर पूछा : ‘हाँ, तो फिर बोलो क्या विचार है ? कहो तो आज दिन भी अच्छा है, इसलिये रात को ही...’

‘यह तो ठीक है; लेकिन पीहरवालों से तो दुश्मनी...’

मनोरदा से न रहा गया। बोले : ‘तभी तो परसाल जब बीमार पड़ीं, तब भाई और भोजाइयों ने सेवा-चाकरी कर दी थी ! यों ही पीहर-पीहर करके मरी जाती हो ! और यह कोई तुम्हारी सगी भतीज-बहू थोड़े ही है ! और हो, तो भी मुझे इसमें कोई बुराई नहीं दिखती। दूसरा उड़ा ले जाये उससे अपना मुतियाँ क्या बुरा है ?’ इतने पर भी अम्बा ने बातें बनाईं तब मनोरदा से ताना दिये बिना न रहा गया : ‘पीहर की मुहब्बत थी इसीलिये तो छह महीने पहले उसे घर में बिठाने को तैयार हो गईं थीं !’ और अम्बा को अचम्भे में पड़ा देखकर कहा : ‘तुम यह मत समझना कि यह सब मुझ से छिपा है ! बेचरिया के साथ तुम्हारा बैर तो तभी से हुआ है न ? मैं सब जानता हूँ !’ कहकर मुस्कराने लगे।

अम्बा भी धरती कुरेदने लगी। फिर मानो चारों ओर का विचार करके बोलती हो इसतरह बोली : ‘तुम भले कहो, लेकिन यह बात कहीं इतनी सरल नहीं है।’ और मनोरदा की ओर ताकते हुए बोली : ‘मुतियाँ को लुगाई कराने में पीहर छोड़ना पड़ेगा यह तो ठीक, लेकिन जात क्या मुझे छोड़ देगी ? बड़हियों की जात को तुम

नहीं जानते; एक तो डेढ़-दो मन घी खा जायेंगे, और उसी पर जात से बाहर निकाल देंगे !' और सिर हिलाते हुए कहा : 'नहीं लाला नहीं ! भले मेरा लड़का बिना लुगाई का रहे, लेकिन...'

मनोरदा बोले : 'जात की जिम्मेदारी मेरे सिर रही।' फिर अम्बा की ओर झुकते हुए कहा : 'तुम दो मन घी देने को तैयार हो न ? फिर इससे ज्यादा क्या खाएँगे वे ? तुम समझती होगी कि वे दण्ड माँगेंगे; लेकिन जात के रिवाज से अधिक देना पड़ा तो मैं अपने घर से दे दूँगा, और कुछ ? अब भी कोई डर हो तो मन से निकाल देना।'

अम्बा कुछ लाचार होकर बोली : 'क्यों मुझे झंझट में फंसाते हो ? एक तो उसके भाई-भौजाई बैरी हैं और उसी पर...'

'तभी तो तुमने उस दिन सारी रात हमारी नींद हरा म कर दी थी ? मैंने तो उसी दिन समझ लिया था कि अम्बा भाभी यह सब पीहर वालों के लिये नहीं, लेकिन बेचारे बेचरिया से बैर लेने के लिये कर रही हैं !' कहकर कुछ हँसे। फिर बोले : 'लेकिन उन बेचारों को तो खुशी होगी, और अगर न हुई तो मैं बैठा हूँ; तुम डरती क्यों हो ? तुम्हें क्या फिकर...?'

'मुझे क्या फिकर ? अच्छी बात है, इतने बरस बाद मुत्तियाँ के बाप बनकर आये हो तो करो सबकुछ।' और मनोरदा की ओर आँखें मिचकाकर बोली : 'मैं तो एक पैसा भी नहीं दूँगी।'

'आखिर तुमने मुझे समझ क्या रक्खा है ? अगर बखत होता तो यह भी करके दिखा देता !'

अम्बा चुप थी। मनोरदा अम्बा की ओर ताकते रहे। दोनों की आँखें मिलीं और फिर झुक गईं। मनोरदा से बोले बिना न रहा गया : 'अम्बा भाभी ! 'वे' दिन नहीं भूलते !'

अम्बा को मनोरदा की आँखों में कोई परिचित भाव दिखाई दिये होंगे इसलिये, या फिर—'उन दिनों' की याद असह्य हो जाने का डर हो—कुछ भी हो; शायद खास बात अधूरी ही रह जाने की

शंका हो ! कुछ छनककर बोली : 'छोड़ो भी इन बातों को, यह बातें अभी किसलिये निकाल रहे हो ? खास बात करो न !'

मनोरदा ने कहा : 'ठीक, अब बात में क्या बाकी है ?' और उसी समय मोती को पानी का घड़ा लिये अन्दर आता देखकर बोले : 'इस मुतियाँ की जगह कल बहू पानी भरती होगी, दूसरा क्या !' अभी भी अम्बा का 'लेकिन'—मिटा नहीं था। मनोरदा उसे मीठा उलहना देकर 'लक्ष्मी' जैसी बहू की तारीफ करने लगे।

अम्बा ने भी मंजूर किया : 'क्या मैं उसे नहीं जानती ? यों तो राँड दुस्मन को भी प्यारी लगे ऐसी है !'

'और फिर तू तो उसकी सास होने वाली है, तुझे क्यों प्यारी नहीं लगेगी ?' कहकर मनोरदा हँसे और उठने की तैयारी करते हुए बोले : 'तो फिर बात पक्की रही न ? आज रात को...'

'जब तू पूरा बोझ अपने सिर पर लेते हो तब मैं क्यों इन्कार करूँ ? लेकिन जरा मुतियाँ से पूछ लिया हो तो...'

'उससे क्या पूछना है ?' और कुछ हँसकर बोले : 'हाँ, अगर उसके कानों में बात डाल दी जाय तो ठीक...' और अम्बा की ओर देखकर बोले : 'नहीं तो अचानक झूमकू को देखकर पागल हो जायगा !' कहकर हँसने लगे।

'ठीक, अब चुपचाप घर चले जाओ नहीं तो मेरे मुँह से 'कुछ' निकल जायगा !'

और शायद मनोरदा को 'कुछ' सुनने की या फिर दूसरी कोई इच्छा होगी, इसलिये हँसते हुए अम्बा की ओर ताकते रहे। अम्बा खड़ी होकर बोली : 'सच ही कहते हैं कि—बन्दर बड़ा हो जाये लेकिन कुल्लांट नहीं भूलता।' मनोरदा मन ही मन खुश होते रहे।

भान आते ही हुक्का सँभाला और अम्बा को रात के लिये सब तैयारियाँ कर रखने की सूचना देकर बाहर निकले। उनके मुँह पर आनन्द की झलक थी।

जीमने के बाद तुरन्त बेचर के यहाँ पहुँचे और घर के अंदर जाकर भूमकू का नाम लेकर धीरे-से आवाज़ दी ।

भूमकू इसतरह कुठिया पर से उतरी मानो आकाश से बदली उतर रही हो । फिर कुछ रोषपूर्ण स्वर में बोली : 'आज खबर ले रहे हो काका ?'

'लो बोलो ! अरे, तेरे लिये तो अभीतक भटक रहा था और ऊपर से...'

'जमना बीच में ही बोल उठी : 'कुछ ठिकाना पड़ा लाला ? कौन गाँव गये थे ?'

'कहाँ गया बेचरिया ? आने दो उसे, सब सुनाता हूँ ।' और भूमकू की तरफ देखकर बोले : 'बिटिया ! तू किसलिये कुठियों पर चढ़ी थी ?—ठीक, अब बहुत दिनों तक नहीं चढ़ना पड़ेगा !' और आसपास देखने लगे । जमना शायद बेचर को ही बुलाने गई होगी । मनोरदा ने चुपके से भूमकू से पूछा :

'एँ भूमकू, अगर तेरे कपड़े गाँव में पहिनवा दूँ तो ?'

भूमकू को शायद मज़ाक-सी लगी होगी । उसने मुँह फुलाकर नीचे देखते हुए पूछा : 'ऊँह ! गाँव में कहाँ ?'

कहीं पाँच-सात बढ़इयों के घर तो हैं नहीं जो तू पूछ रही है !' अंधेरे में खड़ी हुई भूमकू के गालों पर जो लाली आई थी उसे तो मनोरदा न देख सके, लेकिन उसकी आँखें छोटी होने पर भी छिपी न रह सकीं । उनमें जो हार्दिक आनंद, लज्जा और लज्जा को दबाने से उत्पन्न हुआ रोष प्रगट हो रहा था वह मनोरदा ने परख लिया । उसी पर कुछ ठिनककर भूमकू बोली : 'जाओ, जाओ काका ! मेरी हँसी उड़ाते हो !' उसकी आवाज़ कुछ रुंधी हुई थी लेकिन मनोरदा को उसमें बड़ा मज़ा आया । वे पीठ फेरकर बोले : 'ले, यह चला ! मुझे जो कहना था कह दिया; मानना न मानना तेरी मरजी की बात है !' और बाहर निकल गये ।

भूमकू ने एकदम आँखें पोंछ लीं। आँखमिचौनी खेल रही हो इसतरह बार-बार कुठिया के पास से गरदन लंबाकर भाँकने लगी और बाहर होनेवाली बातचीत सुनने का प्रयत्न करने लगी।

कुछ देर बाद मनोरदा अंदर आकर भूमकू से बोले : 'नहीं मानती हो तो पूछ ले अपनी माँ से !'

'अच्छी बात है !' कहकर भूमकू ने आँखें झुका लीं और साड़ी का पहला चबाने लगी। मनोरदा हँसते-हँसते बाहर निकल गये।

X

X

X

और गाँववालों के आश्चर्य के बीच उसी रात को मोती के साथ भूमकू के कपड़े पहिनवा दिये। किसी ने दूल्हा और दुल्हन दोनों के बाप बनकर फिरते हुए मनोरदा की तारीफ की, तो किसी ने : 'यह मनोर काका पक्का निकला—कौन जाने कहाँ से भूमकू को पकड़ लाया और क्या गोलमाल किया—बड़ा फितरती आदमी है !' कहकर मीठी निंदा भी की। खेती का मौसम न होने से गाँव की जयानी इन सब झंझटों से दूर रहकर आंगन में बैठी-बैठी मस्तीभरे गीत गा रही थी। कोई शुभेच्छा व्यक्त करते थे तो कोई-कोई जलते हुए दिल से बताशे लेकर चले जाते थे। जात-पात की होने-वाली बातों में : 'मुतियाँ ने इस टन्टे को अपने घर में बिठाकर ठीक नहीं किया !' 'सच्ची बात है, टन्टा और वह भाँसारी पंचायत का !' वगैरह बातें मुख्य थीं।

सब से पीछे मनोरदा भी हुक्का गुड़गुड़ाते हुए निकले और घर आकर खटिया पर लेट गये। मानो घोड़ों पर चढ़कर आ रही हो—ऐसी बड़बुझों की पंचायत के लिये ब्यूह रचते-रचते खरटि भरने लगे। लेकिन नींद में भी वह बड़बुझों की पंचायत थी ! जागते समय जो फिक्र थी वही सोते समय भी थी : 'कैसी भी हो, आखिर है तो पंचायत ही न ! शायद भूमकू को वापिस भी ले जाये !'

X

X

X

सवेरा होते ही मनोरदा के सिर पर प्रभों की बौछारें शुरू हो

गई। सबसे पहला प्रश्न करने वाली थी उनकी स्त्री। मनोरदा ने घरवाली का मुँह देखा तो फूलकर कुप्पा होगया था। उसने चाय के लिये दूध देते हुए पूछा : 'बताओ तो सही इतने दिन कहाँ गये थे ? और फिर खाली हाथ लौट क्यों आये ? लोग तो कहते हैं कि मुसलमान के पास से छुड़ा लाये। यह सब क्या गप्पें हैं ? कुछ बोलो तो...!'

मनोरदा अटसंट कहने लगे : 'यह तो कहूँगा ही ! जरा धीरज तो रख ! पहले घर का काम तो कर ले !'

नागिन की तरह फुंकारती हुई घरवाली बोली : 'धीरज क्या रखूँ तुम्हारा सिर ? महसूल के रुपये थे वे भी उड़ा आये; चार दिन बाद अपने बाप को क्या जवाब दोगे...?' लेकिन किसी के पैरों की आहट सुनकर गौहरे में चली गई। बोलना तो चालू ही था : 'मैं तो हेरान हो गई हूँ ! हे भगवा...न, अगर मौत दे तो आफत से छूटूँ...'

'क्या है भाभी ! क्यों गरम हो रही हो ?' कहता हुआ वीरा अंदर आया। मनोरदा को वह भगवान-सा प्यारा लगा।

भाभी ने गौहरे में से जवाब दिया : 'चूल्हे में गई' तुम्हारी भाभी और भैया !'

मनोरदा ने वीरा को चाय का 'चार्ज' सौंपते हुए कहा : 'यों ही बक रही है; बड़बड़ाने की जो आदत पड़ी है वह तो मरने पर ही मिटेगी !'

परन्तु वीरा ने भी चाय पीते-पीते यही सवाल पूछा : 'लेकिन मनोर भैया ! यह लड़की तुम्हारे हाथ लगी कैसे ?'

मनोरदा वीरा के सवाल में समाया हुआ 'नफे' का अर्थ समझ गये। कहने का मन तो हो गया कि—इतने दिनों तक मिलने वाले दो-चार आने भाग का लालच शायद इसमें भी होगा, लेकिन यहाँ तो गाँठ का देना पड़ेगा बेटा ! लेकिन यह न कहकर बोले : 'ठीक, वू जरा यह बर्तन उठाकर रख दे, फिर सारी बात सुनाता हूँ।'

और हुक्का तैयार करने लगे।

दोनों चौपाल में आकर बैठे ही थे कि इतने में भूमकू की माँ और पीछे से बेचर भी आ पहुँचा। फिर तो दूसरे भी दो-चार आदमी आ गए। कल्लू भी खेत से आ गया था, वह भी मनोरदा से पूछे जाने वाले सवाल-जवाब सुनने को बैठ गया।

‘लो मनोरदा काका, कुछ बताओ तो कि भूमकू का क्या हुआ था? हमने तो सुना है कि मुसलमान के हाथ से छुड़ा लाए हो। क्या यह सच है?’ एक आदमी ने पूछा।

‘कहता हूँ भैया कहता हूँ, जरा हुक्का तो पीने दो!’ कहकर मनोरदा हुक्का पीने लगे।

एक औरत ने भूमकू की माँ से पूछा: ‘भूमकू कब आ गई थी और किसने यह खाना लगा दी?’

लेकिन भूमकू की माँ क्या उत्तर देती? उसने खुद ही भूमकू को फुसलाकर जानने का प्रयत्न किया था लेकिन उसने अटसंट बातें बनाई थीं—

‘मैं उस दिन रात को वहाँ—महुए के नीचे नहीं बैठी थी? वहाँ से मैंने मा’राज के मंदिर का रास्ता पकड़ा। मंदिर के पास पहुँचते ही उन्होंने मुझे बुलाया। तीन दिन तक तो सगी लड़की तरह रखा; लेकिन मुझे डर लगा कि कोई जान लेगा, इसलिये वहाँ से भाग निकली। रास्ते में एक मुसलमान मिला; वह मुझे चिकनीचुपड़ी बातों में फुसलाकर लिए जा रहा था कि इतने में मनोरदा काका मिल गये और वापिस घर ले आये।’ ऐसी बनावटी बातें करती हुई भूमकू से बेचर ने स्पष्टता के लिये बात की लेकिन वह रो पड़ी। रोते रोते बोली: ‘सब मिलकर किसलिये मेरा जी खाते हो!’ फिर तो घरवालों ने भी सवाल पूछना बंद कर दिया था। लेकिन भूमकू की माँ लोगों को कैसे सारा किस्सा सुना सकती थी? गाँववाले तो यही समझते थे कि भूमकू पटवारी के साथ भागने के बाद आज पहली ही बार गाँव में आ रही है।

और फिर मनोरदा ने बात शुरू की : 'यह तो ठीक हुआ भैया, कि मैं रास्ते में मिल गया—गाँव की तो ठीक, लेकिन धरम की इज्जत बच गई, नहीं तो...'

'कैसे मनोर भैया ! पूरी बात करो तब समझ में आए न ?' कहकर वीरा कारण जानने के लिये उतावला हो गया।

मनोरदा को कहाँ पूरी बात करने में देर लगने वाली थी ? कहने लगे : 'मैं दोपहर को दीवान सा'ब की कचहरी से फारिग हुआ कि सीधा घर का रास्ता पकड़ा। खाँडा पहाड़ के पास आया और सूरजदेव छिपने लगे ! एक तो अकेला और फिर खाँडा पहाड़ का रास्ता ! मैंने लम्बी लम्बी डों भरना शुरू किया। अभी तो घटिया में घुस नहीं पाया था कि थोड़ी दूरी पर किसी औरत की आवाज सुनाई दी। देर हो रही थी फिर भी मैंने सोचा कि देखू तो कौन है; कौन यह जिद्दाजिदी कर रहा है ? ऐसा विचार कर लुकते-छिपते आगे बढ़ा। उन बेरियों की आड़ में खड़े होकर देखा तो भूमकू ! एक सिपाही जैसा आदमी कह रहा था : 'चल चल, मैं तुम्हें पटवारी के पास पहुँचा दूँगा।' भूमकू इन्कार कर रही थी। वह सिपाही फिर समझाने लगा। लेकिन भूमकू इतना तो समझती थी कि यह रास्ता भीलों के झोंपड़ों की और जाता है। उसने कहा : 'लेकिन इधर तुम कहाँ जा रहे हो ?' फिर कुछ सोचकर बोली : 'नहीं, नहीं, तुम मुझे धोखा दे रहे हो !' इतना कहकर मनोरदा सांस लेने लिये रुके और फिर कहने लगे : 'लेकिन भैया, उस सिपाही ने तो इस खूबी से बात की, जिससे भूमकू को लगा कि जरूर वह पटवारी वहाँ जमीन नापने आया होगा। वह नो जाने को तैयार हो गई। लेकिन मैं उस मियाँ की सूरत देखते ही भाँप गया कि साला गुंडों का सरदार है। और तुम्हें तो खबर ही है कि इधर की जमीन परसाल नप चुकी है। मैं लपककर आगे बढ़ा और उस मुसल्ले को ललकारा : 'खड़ा रह !' एकदम उसके आगे जाकर खड़ा हो गया और लट्ट कंधे पर रखकर ही उससे कहा : 'क्यों

मियाँजी ! लड़कियाँ फुसलाने की नौकरी करते हो ?' इतने में तो भूमकू 'ओ काका !' कहती हुई मेरे पैरों से लिपट गई ।' कहकर मनोरदा ने बात की लय में हुक्का पीना भूले हुए वीरा के हाथ से हुक्का ले लिया । चौपाल में इतनी शांति थी कि अगर सुई गिरती तो उसकी खनखनाहट सुनाई देती । अभी भी लोगों के मुँह पर उत्सुकता दिखाई देती थी । एक ने तो पूछा भी : 'फिर क्या हुआ मनोर काका ?'

मनोरदा दूसरे के हाथ में हुक्का थमाकर बोले : 'फिर क्या भैया ! मियाँ को मैं ऐसा सबक सिखाता कि जनमभर याद रहे ! लेकिन बेटा खड़ा रहे तब न ? मैं भूमकू को खड़ा करने लगा कि इतने में तो दुम दबाकर नौ दो ग्यारह हो गया...'

'पहचान तो लिया होगा मनोर भैया ?' वीरा ने बीच ही में पूछा ।

'कुछ अंधेरा-सा था इसलिये एकदम तो नहीं पहचान सका, लेकिन ऐसा लगता है कि उस कोयले के कंटराकटी का सिपाही होगा—अपने राज में तो मुझे ऐसा कोई दिखाई नहीं दिया !'

बात पूरी होने पर भी सबको अधूरी-सी मालूम होती थी । एक दूसरे जवान ने पूछा : 'फिर मनोर काका ?'

'फिर क्या भैया ! मैं तो दाँत कचकचाता और गालियाँ देता हुआ वहीं खड़ा रहा । लेकिन जब वह मुसलमान आँखों से ओझल हो गया तब देखा तो भूमकू फूट-फूटकर रो रही थी !' मुँह के भावों को पूरी तरह व्यक्त करते हुए मनोरदा बोले : 'ज्यों-ज्यों मैं उसे धीरज देता त्यों-त्यों वह और रोती थी...' वीरा की ओर ताककर बोले : 'मैं तुझ से क्या कहूँ वीरा, वह कितनी रोती थी ! अरे पहली बार ससुराल जाने वाली लड़की विदा के समय रोती है वह तो उसके सामने होगा किस लेखे में !' कहकर जोर से ठंडी साँस लेते हुए बोले : 'मेरी आँखें भी उस समय डबडबा आई थीं ! बड़ी मुश्किल से उसे चुप कर सका । चुप ताँ हो गई, लेकिन बोली : 'चाहे

जो हो लेकिन घर तो नहीं आऊँगी !' मैंने सोचा कि अगर अकेला छोड़कर चल दूँगा तो यह किसी कुएँ बावड़ी में गिरेगी या फिर जैसा यह मिला था वैसा ही कोई मुसलमान उड़ा ले जायेगा ! आखिर उसे धमकाकर साथ लिया !' कहकर मनोरदा बात को समेटते हुए बोले : 'गाँव के साथ-साथ धरम की इज्जत बच गई और पूरब जनम में पाप करते हुए हिचकिचाई होगी, उसी का फल है कि ठिकाने पड़ गई।' कहकर फिर हुक्का गुड़-गुड़ाने लगे।

एक अघेड़ ने कहा : 'यह तो ठीक है मनोर काका ! लेकिन साली 'छोलों की जात' है तो नीच ! अगर बिगड़ गई तो मुत्तियाँ का घर बरबाद कर देगी ! कुछ भी हो आखिर जात तो कमीनों की न !'

'अरे भैया, यह तो ऐसा ही चलता है। बामन हो या चमार, जो गुना करेगा उसे कोई नहीं छोड़ेगा !' और फिर खड़े होते हुए बोले : 'अब तो वे पंच हैं और मैं हूँ—देखता हूँ क्या होता है !' और कंधे पर कमरी डालकर लोगों के साथ-साथ वे भी घर से निकल पड़े। जब मैं तमाखू न होने का ख्याल घर से बाहर निकलते ही आया लेकिन वापिस लौटने की हिम्मत न कर सके। घर से निकलते समय उन्होंने घरवाली का नागिन जैसा मुँह देखा था। लोक-लज्जा के कारण वह बांली न थी लेकिन उसकी आँखें देखकर ही मनोरदा ने इतना तो पड़ लिया था : 'देख लो इस खूँसट की बातें ! घर के पन्द्रह-बीस का पानी कर आया उसका तो कुछ नहीं, और ऊपर से मुसलमान की बातें बना रहा है !'

मनोरदा ने दोपहर का खाना कल्लू के हाथ मंगाकर खेत पर ही खा लिया। फिर सारा दिन अम्बा के यहाँ से वीरा के यहाँ और वीरा के यहाँ से लछुआ के यहाँ भटककर पूरा किया। आखिर ब्यालू के लिये तो घर आना ही पड़ा; लेकिन उस समय उन्होंने एक बहाना ढूँढ़ लिया : 'तुझे क्या पता कि सब रुपये खतम हो गये हैं, महसूल भरने से काम है या और कुछ ? अगर उस समय

न दूँ तो कहना ? मेरी तो जान खा ली !'

'उस समय रोना चढ़र ओढ़कर, मुझे क्या करना है !' घर-वाली ने खटिया पर गुदड़ियाँ पटकते हुए कहा ।

मनोरदा ने ठंडा पानी छिड़का : 'अब जरा समझी ! बेकार जी जलाती रहती है !'

इसका जवाब तो मनोरदा को गरमागरम मिला था, फिर भी वे चुप रहे और घरवाली भी किवाड़ लगाकर घर में आरती उतारती रही ।

X

X

X

दूसरे दिन तो घोड़ों पर चढ़कर आई हो इस तरह ढोर निकलते ही बड़इयों की पंचायत मोती के आंगन में जमा हो गई । नागा साधुओं की तरह उनका एक ही सवाल था : 'कहाँ गया मुलियाँ ? औरत सौंप दे नहीं तो तेरी खैर नहीं है !'

लेकिन घर में कोई हो तो उत्तर दे । बेचर को भी तलाश किया लेकिन उसके घर से उत्तर मिला कि वह किसी दूसरे गाँव ग्राहक का काम करने गया है ।

करीब दो घंटे से बड़इयों के पंच अनाप-शनाप बक रहे थे । गाँव के पटेल एक के बाद एक वहाँ जमा होगये थे और तीसरे बुलावे पर मनोरदा भी हुक्का गुड़गुड़ाते हुए धीमी डगें भरते आ पहुँचे । पंचायत के अगुए जगह देते हुए बोले :

'इधर आओ मनोर भैया !' रामराम खेलते हुए मनोरदा एक खटिया के सिरहाने आकर बैठ गये ।

शायद पंचों ने सुन लिया होगा, इसलिये रुमक की पहली ससुराल वाले—सिर्फ नाम लेना बाकी रखकर—मनोरदा को हर तरह से उलहने और गालियाँ देते रहे, लेकिन मनोरदा ने तो आँख उठाकर भी न देखा ।

आखिर दो-चार अगुओं ने उन्हें ठंडा किया और मुकदमा पेश करते हुए बोले : 'हम और कुछ नहीं चाहते, हमारा आवामी हमें

सौंप दो, जिससे हम चले जायें।' यही बात लगभग चार-पाँचबार, चार-पाँच मुँह से निकलती सुनाई दी। धाँधल-सी मच गई।

अब मनोरदा से न रहा गया। कुछ तनकर बोले : 'अगर तुम्हारा आदमी था तो अभी तक कहाँ सो रहे थे ? यहाँ क्या रखा है ? जाओ उस बामन के पास; ज्यों-ज्यों बोलता नहीं त्यों-त्यों सिर पर चढ़े जा रहे हो !'

एक आवाज आई : 'बामन ने तो निकाल दिया था पटेल ! लेकिन तुमने जबरदस्ती करके उसके कपड़े पहिनवाये हैं; क्या हमें खबर नहीं है ?'

'कपड़े न पहिनवाता तो क्या करता ? मुसलमान हो जाने देता, क्यों ?'

'ऐसी दया थी तो अपने लड़के के साथ पहनाते तब जानता !' भूमक की सुसरालवालों में से एक कड़ककर बोला।

मनोरदा ने जवाब दिया : 'जात की होती तो यह भी करता !' और बगल में बैठे हुए दो-चार पंचों की ओर ताकते हुए बोले : 'तुम्हीं कहना भैया, जात की छोरी परजात में दी जाती है ?'

पंचों ने नीचे देखते हुए धीरे-से सिर हिलाया।

'सड़ियल कुत्ता भी अपने मुहल्ले में शेर हो जाता है !' इस कहावत के अनुरूप एक जवान खड़ा हुआ और आँखें निकालकर बोला : 'ए पटेल, तू अपनी दुशयारी अपने पास रख; उठ जा हमारी पंचा'त में से; नहीं तो...'

'एकबार पूछ ले अपने पंचों से, कहेँ तो मैं यह चला।' कहकर मनोरदा ने बगल में रखी हुई कमरी उठाली और तेवर चढ़ा कर बोले :

'पंचों की तौहीन करता है ! याद रखना बेटा, अगर एक-एक को जेल न भिजवाया तो मनोर मुखिया मत कहना ! समझ क्या रखा है ! देखता हूँ किस तरह गाँव से आदमी लेकर जाते हो !' कहकर एकदम खड़े हो गये।

दो-तीन बुजुर्गों ने मनोरदा का हाथ पकड़ लिया और बोले : 'बैठो बैठो मुखिया, यह तो लड़के हैं, इनकी बातों पर ध्यान नहीं दिया जाता !' और फिर उस जवान को दो-चार गालियाँ सुनाकर चुप कर दिया ।

मनोरदा नीचे बैठ गये और नर्मी से बोले : 'जरा ढँग से बात करो—पूछो कि किस्सा क्या है ? तुम तो इसतरह बात करते हो जैसे डाका डालने आये हो ! यह कोई बात का ढंग है ?' फिर कुछ रुक-कर बोले :

'और जितने हो उतने न बोलोगे तो क्या पंचा'त नहीं होगी ? यह सब जो बड़े-बूढ़े हैं, वे क्या नहीं समझते ? तुम बोलोगे तभी पंचात होगी ?' शांति फैल गई ।

मनोरदा की खटिया पर बड़इयों के चार-पाँच होशियार कहे जाने वाले पंच आकर बैठ गये ।

मनोरदा ने कहा : 'बोलो, अगर तुम कहो तो तुम्हारा आदमी तुम्हें सौंप दूँ, नहीं तो तुम्हारा खर्च वापिस लौटा दूँ ।'

भूमकू का ककिया ससुर और एक दूसरा आदमी—इसतरह दो जनों बोल उठे : 'नहीं, हमें तो अपने आदमी से मतलब है, खर्च नहीं चाहिये ।'

साथ ही साथ और एक-दो बोल उठे : 'हाँ, हाँ, हमें और लंबी-चौड़ी पंचा'त नहीं करना है—हमारा आदमी सौंप दो तो चलाते बनें ।'

इतने में भूमकू का घरवाला बोल उठा : 'सीधी तरह से नहीं दोगे तो फिर देख लो तमाशा ! अगर राँड के भोंटे पकड़कर बीच गाँव से न ले जाऊँ तो अपनी माँ से पैदा नहीं हुआ था !'

और पाँच-सात आदमियों ने हाँ में हाँ मिलाई : 'यह तो होगा ही; देखते हैं किसकी माँ ने सवासेर सोंठ खाई है जो बीच में पड़ता है !' कहकर कोई खड़ा हो गया तो कोई झुंझलाकर दाँत भीचने लगा ।

उन लोगों का गुस्सा देखकर मनोरदा का आत्मविश्वास भी क्षण-भर के लिये डगमगा गया। मन में सोचा : 'यह क्या कहते हैं !' और उन दो पंक्तियों में से एक पंक्ति तो ज़रा उतावल में ही बढ़-बड़ा गये : 'भीलन लूटीं गोपिका बेइ अरजुन बेइ बान !' उन सब की शक्तों भी उस समय भीलों जैसी ही मालूम होती थीं। लेकिन दूसरे ही क्षण मनोरदा की आत्मदृढ़ता ने उनकी सहायता की : 'अरे, इन की तो हिम्मत ही क्या है ?' ऐसा सोचकर कुछ अकड़कर बैठ गये। हो-हल्ला भी शांत हो गया था। मनोरदा ने शांति से मुस्कराते हुए माधौ बढ़ई से पूछा : 'फिर ले जाकर क्या करोगे माधौ ?'

माधौ बढ़ई के बदले उसका भतीजा बोल उठा : 'जो कुछ करना होगा सो करेंगे, तुम्हें इससे क्या मतलब ?'

मनोरदा नर्मी से बोले : 'मतलब है भैया, तभी तो पूछता हूँ ! मैं उसे मुसलमान के हाथ से बचा लाया हूँ, इसलिये मुझे जानना तो चाहिये न ?'

'सब जान लिया ! अगर मेरे हाथ में आ जाय तो यहीं पंचों के सामने नाक काट लूँ राँड की ! देखता हूँ फिर कौन आता है सामने...' कहकर साँस लेने के लिये रुका। उसका शरीर कांप रहा था। लेकिन उसकी जबान चालू होने से पहले मनोरदा बोल उठे : 'सुन लिया माधौ ?' कुछ रुककर कहा : 'बोलो, ले जाना है बहु को ?' पूछकर आँखें चढ़ाये हुए पंचों की ओर ताकते रहे। फिर बोले : 'यह तो तुम चार बड़े-बूढ़ों का मुलायजा कर रहा हूँ, नहीं तो इसको अभी हवालात में बंद करवा दूँ...तुम सरकारी कायदे-कानून नहीं जानते !'

'अरे मनोर भैया ! तुम भी लड़कों की बातों पर ध्यान देते हो। न तो हमें नाक काटना है और न मारना है। हमारा आदमी है इसलिये लेने आए हैं; दे दो जिससे अपना रास्ता पकड़ें।' भूमक का ककिया ससुर—माधौ बोला।

मनोरदा ने हँसकर धीरे-से कहा : 'क्या देखकर बोलते हो माधौ भैया ! और कुछ तनकर बोले : 'तुम्हीं से पूछता हूँ—अगर तुम्हारे गांव में किसी की औरत इसतरह आई हो, तो क्या तुम उसे लौटा दोगे ?'

'हाँ, हाँ जरूर।' माधौ बढ़ई बोला ।

मनोरदा दूसरे पंचों की ओर देखकर हँसे और बोले : 'सुन लिया भैया !—क्या तुम ऐसा कर सकते हो ? ईमान से कहना !'

तीन में से दो बोले : 'झूठ कैसे कहें; आए हुए आदमी को तो कोई नहीं सौंप सकता...'

यह सुनते ही माधौ बढ़ई झुल्ला उठा : 'तो फिर यहाँ पंचा'त करने आए हो या झूठ मारने ?' और उँगली उठाकर चेतावनी देने लगा : 'देखो, पंचा'त करना हो तो अच्छीतरह करो नहीं तो मुझ से बुरा कोई न होगा !'

मनोरदा आश्चर्य से आँखों फाड़कर माधौ और दूसरे पंचों की ओर ताकने लगे ।

एक बोला : 'डर दिखाकर पंचा'त कराना हो तो कोई दूसरे देख लेना; हम कहाँ किसी का दिया हुआ खाते हैं जो डर जायें !'

'और तुम भी कहाँ के राजा हो जो हम दब जायें—पंच के घर की तुम क्या पंचा'त करोगे ?' माधौ ने जवाब दिया ।

अभीतक चुप बैठा हुआ जाति का अगुआ धन्ना बुड़्ढा आँखें निकालकर माधौ की ओर देखता हुआ बोला : 'तो फिर यहाँ क्या झूठ मारने को बुला लाया था ?'

चूँकि उस आपसी लड़ाई से मनोरदा को तो लाभ ही था—और हो सकता है कि उन्होंने जान-बूझकर ही उकसाया हो—फिर भी उन्होंने अपनी हमदर्दी बतलाई :

'अरे भैया ! यह तो ऐसा हाल हुआ कि—सांड़-सांड़ लबें और बारी कं भुक्के उड़ें !—बेचारा सुतियाँ नाहक मारा जायगा !' और फिर धन्ना से बोले : 'इसका कुछ निपटारा करो धन्ना काका, फिर

लड़ना कभी !'

धन्ना ने साफ-साफ बात कह दी : 'देखो माधौ, मैं तो कहता हूँ कि अगर तुम्हें ले ही जाना है तो तुम जानो और तुम्हारी पंचा'त जाने; मुझे पाप में नहीं पड़ना है। हाँ, अगर कुछ डाँड़ करना हो तो सब मिलकर तय कर लो।'

चूँकि एकबार तो गड़बड़ी ज़रा बढ़ गई; क्योंकि कुछ लोगों ने धन्ना की बात का समर्थन किया तो कुछ विरोध भी करने लगे, लेकिन उन सब को जब मैं रखने वाले उन पाँच पंचों ने थोड़ी बातचीत के बाद समझौता किया कि— फिलहाल तो मोती को जात से बाहर किया जाय; फिर अगर पंचों की मर्जी हो तो पाँच या पाँचसौ का दंड करके जात में मिला लें। माधौ बढ़ई ने संतोष व्यक्त किया : 'ठीक है, एकबार तो उसका जात में हुक्का-पानी बँद होना ही चाहिये।'

मनोरदा अभीतक तो चुप बैठे थे, लेकिन अब उनसे न रहा गया। एकबार तो जात का हुक्म सिर पर चढ़ा लिया, फिर कुछ गंभीर होकर बोले : 'धन्ना काका ! मुतियाँ ने जात का बिगाड़ा है या सुधारा ?'

'क्यों ?'

'मैं तो यही कहता हूँ कि अगर मुतियाँ उसे रखने को तैयार न होता तो दूसरा कोई मिल ही जाता—अगर न मिलता तो जहाँ से लाया हूँ वहीं छोड़ने को मजबूर होना पड़ता। अगर छोड़ आऊँ और वह किसी कुएँ बावड़ी में जा गिरे तो हत्या किसे लगती ? और उस बढ़ई का घर बसा दिया इसमें मेरा क्या स्वारथ था, कहो ? किसी दिन पानी का लोटा भरकर देगी तो तुम्हें देगी; एक घर बसा तो तुम्हारी जात में बसा; अब तुम्हीं कहो कि इससे मुझे क्या फायदा हुआ ?' कहकर मनोरदा चुप होगये। पंचों के मुँह देखने से लगता था मानो मनोरदा के कथन का अर्थ न समझकर चुपचाप पृष्ठ रहे हों : लेकिन तुम कहना क्या चाहते हो ?

आखिर धन्ना ने कहा : 'कुछ समझ में नहीं आता मनोर मुखिया !'

और यह मौझा मिलते ही मनोरदा ने अपनी पुरानी बात दुहराई—जो गाँववालों से कही थी। डबडबाई हुई आँखों को पोंछते हुए बोले :

‘इसीलिये तो कहता हूँ कि मानो या न मानो लेकिन कसूर मेरा है; इसमें बेचारे गरीब को क्यों मारते हो ? मूरख तो मैं ही था जो धर्म के भ्रम में पड़ा !’ कहकर उदासभाव से नीचे देखने लगे और एक ठंडी साँस ली। कुछ रुककर मानो स्वगत बड़बड़ा रहे हों इसतरह बोले : ‘इसमें बेचारे मुतियाँ का क्या कसूर ?’

‘तुम भी कैसी बात करते हो मनोर भैया ? मुतियाँ का कसूर क्यों नहीं ? जो दुनियाभर में भटककर आई है उसे घर में बैठाते समय पंचों से पूछना तो चाहिए न ?’ धन्ना ने कहा।

‘बात ठीक है धन्ना भैया ! लेकिन जरा सोचोगे तो तुम्हारी समझ में आयेगा !’ धन्ना बढ़ई की ओर ताककर मनोरदा ने कहा। ‘धन्नाभा...ई ! जात तो गंगा कहलाती है गंगा !’ और दूसरों की ओर देखकर आगे बोले : ‘अगर ऐसा न होता तो जब कोई बड़ी पंगत होती है उस समय गाँव की औरतें हाथ में चावल लेकर परकम्मा क्यों देतीं ? जात तो धरती मैया के बराबर है !’ फिर कुछ रुककर जब लोगों ने ‘सच्ची बात है’—ऐसा स्वीकारात्मक सिर हिला दिया तब बोले : ‘यह लड़की परजात में गई थी यह सच है, लेकिन ऊँची कौम में गई थी यह तो तुम सब जानते ही हो !’

माधौ बढ़ई बीच में ही दहाड़ उठा : ‘इसमें क्या हुआ ? ऊँची है तो कहीं अपनी जात से बड़ी हो जायेगी ? यह सब हुशियारी यहाँ नहीं चलेगी मनोर मुखिया ! कहे देता हूँ !’

‘अरे भले आदमी ! इसे कौन नहीं मानता ? लेकिन यह तो वह कहावत हुई कि—‘कसूर किया भैसे ने और दाग दिया मशक को !’ अगर डाँब करना हो तो लड़की का करो, जिससे फिर कोई दूसरी ऐसा करने की हिम्मत न कर सके !’ और धन्ना बढ़ई की ओर देखकर पूछा : ‘क्यों धन्ना काका ! मैं झूठ कहता हूँ ?’

सब को चुप देखकर आगे बोले :

‘यह तो ठीक है रज्जू भैया ! लेकिन छपन्निया में तो—तुम सब जानते ही हो—क्यों धन्ना भैया ! जो कल्लियों और दीमरों के घर में रहकर जिये थे उन्हें भी जात ने मिला लिया । अभी तो हमारी जात में भी उनमें से कई जिन्दा हैं; कहो तो बतलाऊँ ?’

‘अरे, हमारी जात में कहाँ कमी है मनोर भैया !’ कहकर धन्ना ने सिर झुकाए बैठे हुए माधौ बड़ई की ओर देखा । मनोरदा ने माधौ से कहा :

‘इसीलिये मैं तो कहता हूँ माधौ भैया, कि जो होना था सो हो गया, अब इन लोगों के सिर से भार हलका करके जाओ तो अच्छी बात है । अपनी जात में तो ऐसे झगड़े बारह महीने में बारह बार होते हैं; अगर उन्हें इस तरह ठेलते जायेंगे तो कैसे पार आयेगा ?’

धन्ना ने कहा : ‘ठीक है, अगर पंचों को सूझ पड़ती हो तो लड़की को सजा दो, और मुत्तियाँ का भी डौंड करो !’

पंचायत में से दो-चार आवाज़ें आई : ‘हाँ भैया हाँ, निपटाओ न झगड़ा !’ तो दूसरा कोई बोला : ‘इस तरह कैसे निपट सकता है, अभी तो न जाने क्या-क्या होगा !’

बहुत-कुछ बोलाचाली के बाद आखिर तय हुआ कि मोतो पंचायत के रिवाज़ के अनुसार दंड भरे; दो पंगतें करे; और तीसरी शर्त—जो झमकू के ससुराल वालों ने रखी थी वह—यह थी कि झमकू दाँत में तिनका दबाकर पंचों के सामने खड़ी हो ।

मनोरदा ने एकबार तो स्वीकार कर लिया, लेकिन बाद में जात के उन पाँच अग्रुओं को एक ओर ले गये और कहा : ‘माधौ भैया ! यह बात ठीक नहीं है हाँ ! इसमें न तो तुम्हारे कुल की इज्जत बढ़ेगी और न पंचों की; सिर्फ एक कहावत रह जायेगी ! हाँ, एकबार जरूर तुम्हारे नाम का डंका बजेगा, लेकिन बाद में उसका फल तुम्हारे लड़के-लड़कियों को उठाना पड़ेगा ! फिर ताकते हुए माधौ बड़ई को सम-

माया : 'बाद में तुम्हारे ही आदमी कहेंगे कि—देख लिया उस माधौ का कुल, बड़ा भारी कुल है ! कमकू की जैसी दशा की थी वैसी ही अपनी लड़कियों की करेगा तो ? और सच कहता हूँ माधौ भैया ! लोग तो दोनों ओर ढोलक पीटते ही हैं !'

कुछ रुककर विचार में पड़े हुए धन्ना बढ़ई से भी कहा : 'और धन्ना काका ! इससे पंचों की कोई इज्जत नहीं बढ़ जायेगी ! मुझे क्या ? मैं तो उस लड़की से तिनका क्या, पूले का पूला मुँह से उठवा दूँ ; लेकिन इसमें हम सब की शोभा क्या ? हाँ, अगर किसी मर्द से तिनका दबवाया हो तो ठीक भी है, लेकिन औरत से... ! मुझे तो यह ठीक नहीं लगता !' कहकर मनोरदा ने ठंडी साँस ली। फिर बोले : 'मेरे तो सफेद बाल होगये, लेकिन ऐसी सजा दुनिया में आज तक कहीं नहीं सुनी !'

और आखिर बात छोड़ दी। लेकिन माधौ बढ़ई ने एक दूसरी शर्त रखी : 'लड़की—यानी उसके पीहरवाले—बीस ब्राह्मणों को भोजन करायेँ।'

सबने मंजूर किया।

मनोरदा को मन ही मन हँसी आ गई : 'बेचारी ने कुछ दिनों तक एक ब्राह्मण को भोजन कराया उसका तो यह फल मिला कि चींटी के सिर पर लश्कर चढ़ आया ! और अब बीस को... !'

×

×

×

चूँकि मोती के घर का कोई दिखलाई नहीं देता था, लेकिन उसके किवाड़ तो खुले थे। गाँव के पटेलों ने चौपाल में भट्टी बनाकर तपेले चढ़ा दिये। देखते ही देखते चूरमा और दाल-भात तैयार हो गया। बढ़इयों की पँचायत और गाँव के कुछ पटेलों को जिमाकर मनोरदा भी जीमने बैठ गये।

शाम को हुक्का-बुक्का पिलाने के बाद मनोरदा ने उन पाँच अगुओं को एक कोने में ले जाकर रिवाज के माफिक दो सौ रुपये गिन दिये। पाँचों को सिरोपाव के भी पाँच-पाँच देना न भूले और

फारगती का कागज़ लिखवाकर ज़ेब में रख लिया ।

एक पंगत खाकर और दूसरी बाकी रखकर शाम को सब लोगों ने घर का रास्ता लिया । कहीं से बेचर आ पहुँचा और छह-सात आदमियों को अपने घर ले गया—सिर्फ हुक्का-तमाखू के लिये ही नहीं किन्तु रातभर ठहरने के लिये—लेकिन उनमें भूमकू के ससुराल का कोई नहीं था; बेचर ने आग्रह भी नहीं किया था और न करना योग्य ही था ।

दीया-बत्ती के समय अम्बा और भूमकू मनोरदा के घर से आ गईं और मोती भी कहीं से आ पहुँचा । ‘लो, खा लो जल्दी, ढीरों की बेरा होगई । चौपाल में बैठे हुए मनोरदा ने कहा ।

अम्बा ने पहले तो जीमने से इन्कार किया, लेकिन मनोरदा के मीठे उलहने और भूमकू के स्नेहभरे आग्रह के दश होकर थोड़ी देर बाद जीमना मंजूर कर लिया, और मोती तथा भूमकू से जीमने को कहकर खुद मनोरदा के पास बैठ गई ।

मनोरदा ने सब बातों का संक्षिप्त सार कह सुनाया । बनिये के घर से लाकर दिये गये ढाई सौ रुपयों का हिसाब और बाकी के पाँच रुपये अम्बा के हाथ में देते हुए बोले : ‘लो, इतने बाकी बचे ।’

‘कितने हैं ?’

‘पाँच ।’

‘इनकी तुम पगड़ी बाँध लेना !’ अम्बा ने हँसकर कहा और इन्कार करते हुए मनोरदा का हाथ ठेलती हुई बोली : ‘पाँच नहीं लोगे तो मुतियाँ इनसे लखपती नहीं बन जायेगा; मैं पंचा’त करने के थोड़े ही दे रही हूँ ?’ और तिरछी नजर से मनोरदा की ओर ताकने लगी ।

मनोरदा को मानो उसी में से जवाब मिल गया हो इसतरह

चुप रहे और 'तो फिर काहे के ?' ऐसा प्रश्न न करके हँसकर पाँच रुपये चुपचाप जेब में डाल लिये। कुछ इधर-उधर की बातें करके उठने से पहले भूमकू को बुलाया।

भूमकू दावाजे में आकर खड़ी होगई। बाहर सिर निकालकर पूछा : 'क्या है काका ?'

मनोरदा के चहरे पर हँसी और आँखों में आनन्द की छटा थी। बोले : 'वहाँ ओट में क्या खड़ी है, यहाँ आ !'

भूमकू सिर झुकाए और तेज फिर भी ठिठकती हुई चाल से सास की बगल में आकर पल्ले का छोर चबाती हुई खड़ी हो गई।

'देख बिटिया ! अब तू ससुराल में है। इसतरह पल्ले का छोर नहीं चबाना चाहिए, समझी ? कुछ देर तक सामने ताककर फिर कहा : 'और देख, तेरी सास का स्वभाव जरा तेज है, अगर कुछ बोले तो ख्याल मत करना, समझी बिटिया ?'—फिर अम्बा की ओर देखते हुए भूमकू से कहा : 'अगर ज्यादा गड़बड़ करें तो मुझ से कहना, मैं इनकी खबर ले डालूँगा !'

भूमकू ने बिना बोलेचाले मनोरदा की ओर देखा और थोड़ी-सी गरदन हिलाकर पीठ फेर ली।

'जाती कहाँ है ? एकबार अपने काका का हुक्का तो भर दे !'

वापिस लौटती हुई भूमकू से मनोरदा ने पूछा : 'क्यों, भर देगी न ?'

अम्बा ने कहा : 'क्यों नहीं भर देगी ? जनमभर भरती रहे तो भी कम है !'

भूमकू हुक्के में पानी भरकर ले आई। मनोरदा ने कहा : 'नहीं बिटिया ! मुझे जिन्दगीभर नहीं भराना है; इस एक ही बार में सब बसूल हो गया !'

मैंह पर बनावटी गुस्सा लाकर मनोरदा की ओर देखती हुई :

‘तुम भी काका!’ कहकर झमकू अंदर चली गई।

मनोरदा भी उठे और हुक्का गुड़गुड़ाते घर का रास्ता लिया। अब चिंता थी सिर्फ एक घरवाली की। लेकिन उसके लिये तो रात थी, घरवाली थी और वे थे। मुँह पर चिन्ता का नाम-निशान तक न था।

जिसप्रकार भाप पछाड़ें खा-खाकर फिर पानी हो जाती है उसी-प्रकार मनोरदा की घरवाली के गुस्से का भी हुआ था। चूँकि मनोरदा जिस दिन अहमदाबाद से लौटे थे उसी दिन : कही हुई ‘बामन को सीधा देना कि सही-सलामत इज्जत के साथ घर आ गया।’ और ‘अंधेरी कोठरी’ की—यह सब वनावटी बातें ही मालूम होती थीं, लेकिन गई रात की ‘महसूल नहीं भरा जाये तो कहना!’ इस बात से कुछ विश्वास हुआ था। और मन को सना लिया था कि : ‘चूल्हे में जायें अधिक नहीं मिलेंगे तो; लेकिन उतने तो लायेंगे जितने खर्च किये ! अम्बा से भी थोड़े-बहुत निकलवायेंगे और क्या बेचरिया को यों ही छोड़ देंगे ?’

×

×

×

झमकू का भरा हुक्का गुड़गुड़ाते हुए जब मनोरदा घर पहुँचे उस समय घरवाली भैंस दुह रही थी। घर में घुसते ही कल्लू को बुलाया; लेकिन जवाब न मिलने से ससन्न गये कि खेत पर बसने चला गया होगा।

मनोरदा के चौपाल में अलाव के पास बैठते हुए बोलने के लिये ही कहा : ‘मुझे ब्यालू नहीं करना है !’

घरवाली ने गौहरे में से ही उत्तर दिया : ‘यह तो मैं जानती ही थी कि लड्डू खाए हैं, फिर घर की राब कैसे भायेगी ?’

शब्द तो सच्चे ही थे, लेकिन बोलने के ढङ्ग में वर्षों पहले के तानों की पुट मनोरदा से छिपी न रही। लेकिन उस समय जो गुस्सा करते थे वह आज इतने वर्षों बाद न कर सके—बल्कि कुछ

अच्छा ही लगता था। इसीलिये बात को दबा देने के बदले आगे बढ़ाया। खुश होकर बोले : 'वह कहावत तू नहीं जानती ?' और हँसते-हँसते कहा : 'दूसरे के घर के लड्डू घर की राख की बराबरी नहीं कर सकते !'

'यह तो कुछ वर्ष पहले अपने दिल से ही पूछ लेते !' कहती हुई घरवाली गौहरे से बाहर निकली और मनोरदा की ओर आँखें तरेरती हुई कहती गई : 'अरे अब तो जरा शरमाओ ! लड़कों के भी लड़के हो गये, लेकिन तुम्हें लाज नहीं आती ! हमारा तो ठीक लेकिन लोगों का तो डर रखो !'

'जरा इधर तो आ !' बात में कुछ रहस्य मालूम हुआ होगा इसलिये घरवाली को आग्रह करके बुलाया और 'क्या कहते हो बोलो ?' कहकर कपड़े सिकोड़कर बैठी हुई घरवाली से पूछा : 'इसमें शरमाने की क्या बात है ?'

'मुझ से क्या पूछते हो, पूछो गाँववालों से !'

'फिर भी !'

'लोग तो न जाने कैसी-कैसी बातें करते हैं ! कहते हैं कि फलाँ काका ने तो अपने दूसरे रँडुए लड़के को भी आज ठिकाने लगा दिया !'

मनोरदा को भी यह 'एक पंथ दो काज' होने का पूरा ख्याल तो इसी समय आया। 'लोग भी बेटे कैसी-कैसी बातें बना लेते हैं !' कहकर हँसने लगे।

'बस, तुमसे और होता ही क्या है ? हँस-हँसकर ही तो सब बिगाड़ा है !' कहकर घरवाली ने मुँह मटकाया।

मनोरदा कुछ गम्भीर होकर बोले : 'अच्छा मैं तुझ से अपने दिल की बात कहूँ' कहते हुए कुछ तनकर बैठ गये। हुक्के को बगल में रखते हुए बोले : 'लड़के को तो नहीं लेकिन लड़की को ठिकाने लगा दिया है यह बात सच है !'

‘चुपचाप बैठे रहो, क्यों पाप में गिरते हो ! झूठ बोलने से क्या फायदा !’ कहकर मनोरदा की ओर से नज़र हटाते हुए बोली : ‘इसीलिये तो...भगवान जाने कहाँ इतने दिन लगा दिये ! लड़का रँडुआ न रह जाये इसलिये वापिस घर ले आये !’ और मनोरदा की ओर देखकर हाथ मटकते हुए कहा : ‘बाल सफेद हो गये सफेद ! अब तो भगवान को सिरपर रखकर बोलो !’ चुपचाप बैठे हुए मनोरदा को मुस्कराते देखकर घरवाली को गुस्सा चढ़ा : ‘एक का घर भर दिया और दूसरे को भिखारी बना दिया—लाओ, कहाँ हैं वे रुपये जो कहते थे ? ज्यादा तो भाड़ में गये लेकिन जो घर से लिये थे वे तो दो !’ और फिर तो घरवाली ने रुपयों और गहनों की रकभक शुरू की ।

‘मेरी बात तो सुन ! जरा पृष्ठ तो सही कि मैं कहाँ गया था और क्या कर आया !—फिर ठीक लगे तो लड़ लेना !’ कहकर जेब में से रुपयों की एक पोटली निकालते हुए बोले : ‘ले, अब तो मानेगी कि मैंने लड़के को कैसा ठिकाने लगाया है !’ फिर पैसे मिलते ही खुश हुई घरवाली को देखकर मनोरदा खिन्न हो गये । बोले : ‘अरी पगली ! यह लक्ष्मी तो चंचल है ! अपनी ही बात कटूँ—जब मेरे दूदू जीते थे उस समय पानी की तरह घी बहता था और बनिये के घर पाँच-दस बिसी रुपये पड़े रहते थे ! लेकिन आज तू ही देखती है; बचा है उसमें से कुछ भी ? कुछ रुककर फिर बोले : ‘और किसी के यहाँ होगा भी, तो उसमें से कुछ साथ नहीं आयेगा—आयेंगे तो सिर्फ अपने करम !’ कहकर ज़ोर से साँस लेते हुए मानो स्वगत बोलते हों इसतरह बोले : ‘अमदाबाद गया उस दिन रात को मा'राज ने जो कहा था वह सच ही है,’ और घरवाली की ओर देखकर : ‘कि जिस आदमी को दूसरे के आँसू देखकर हँसी आती है उसे रावण के कुल का ही समझना चाहिए ! भगवान भी...’

‘तो क्या तुम अमदाबाद तक हो आये ?’ ताज्जुब के साथ घर-

वाली ने पूछा ।

‘हो आया और दो रात रह भी आया ।’

मनोरदा का मुँह देखकर शायद घरवाली गुस्सा नहीं कर सकी होगी; फिर भी बोले बिना तो न रह सकी : ‘जब गये थे, तो काम पूरा ही कर आते ! यह कलंकिनी यहाँ से निकल तो जाती ! फिर साथ ही जाते तो कौन रोकता था !’ कुछ रुककर बोली : ‘मैं तो पहले ही कहती थी कि तुम से कुछ नहीं होगा !’

मनोरदा उदासीनता से इतना ही बोले : ‘सब कुछ हो सकता था, लेकिन नहीं किया यह बात भी सच्ची है !’

और कुछ रुककर एक साँस लेते हुए स्वगत बोले : ‘नहीं नहीं, अच्छा ही हुआ; भगवान ने मुझे बचा लिया !’

घरवाली ने कुछ सकपकाकर पूछा : ‘क्यों, क्या पुलिस को खबर पड़ गई थी ?’

मनोरदा हँसकर बोले : ‘ऐसा समझ ले तो भी कोई बुरा नहीं है ।’

‘कुछ सीधी बात तो कहो !’

‘कहूँगा तो भी कोई नहीं मानेगा; और तू तो मुझे बिल्कुल पागल ही समझेगी !’ कहकर मनोरदा चुप हो गये । लेकिन घरवाली के अत्याग्रह के वश होकर उन्होंने बात की : ‘मैं तुझ से क्या कहूँ !’ कहकर शुरुआत करते हुए बोले : ‘भूमकू में न जाने ऐसा क्या दिखलाई दिया कि देखते ही अपनी नाथी याद आ जाती थी ! मन्दिर वाले सा’राज ने उससे कहा था : ‘मनोरदा तो तेरा बाप है, तू शूँ काम रोती है ?’—इसलिये, या फिर और कुछ हो, लेकिन मैंने मन को बहुत समझाया कि नाथी तो स्वर्ग में बैठी है और यह तो परजात की—बढ़ई की लड़की है; फिर भी मेरा मन न माना !’

घरवाली को भी शायद इसी समय याद आया होगा; बोली :

‘राँड का चहरा भी बिल्कुल नाथी से मिलता-जुलता है !’

मनोरदा आगे बोले : ‘तो भी मैं एक न सुनता !—और मैंने तो तय कर ही लिया था; लेकिन अन्त में सब बिगड़ गया ! कितनी रोती थी वह लड़की ! कितनी रोती थी !!—उस वखत मुझे गौने पर ससुराल जाती हुई नाथी की विदा याद आगई ! बिल्कुल उसी की तरह रोती थी ! मुझ से कहने लगी : काका, जब तुम्हीं छोड़कर चले जाओगे तब कौन मेरी सुध लेगा !’ कहकर मनोरदा ने आँखों के कोने साफ किये । गला खंखारते हुए—घरवाली भी अपने आँसू पोंछ रही थी—बोले : ‘न मानती हो तो तू ध्यान से सुनना; मुझे तो हत्यारी की आवाज भी बिल्कुल नाथी जैसी लगती है !’

घरवाली आँखें पोंछने हुए एक ठण्डी साँस लेकर बोली : ‘मैं कहाँ नहीं जानती ?’ कुछ रुककर कहा : ‘जब नाथी और यह दोनों गीत गाती थीं, उस समय कोई कह नहीं सकता था कि दो जर्नी गा रही हैं !’

कुछ देर तक शान्त रहकर बोली : ‘वहाँ से वापिस लाये सो तो अच्छा किया, लेकिन यहाँ जो सिरपच्ची की उसके तो कसकर लेना थे ! जो चली गई उससे तो वहाँ ...’ कहकर आकाश की ओर हाथ लम्बाकर कहा : ‘मेरी बिटिया अब कहाँ मिलेगी ? लोग तो कहते हैं कि मुखिया ने अम्बा और बेचरिया—दोनों की ऐसी बना दी है कि अगर दोनों बीस-बीस का सिरोपाव दें तो भी कम है । उसकी जगह...’

मनोरदा बीच में ही बोले : ‘यह ठीक है, लेकिन जो कुछ मिला वही अच्छा ! मेरा विचार तो एक कौड़ी भी लेने का नहीं था । अभी भी दिल तो इन्कार करता है, लेकिन मैंने सोचा कि जितने खर्च किये हैं उतने लेने में हर्ज नहीं है; बाकी मैं अपने दिल की बात कहूँ ?’ और वैरागी-हृदय से घरवाली की ओर झुककर बोले : ‘रुपये भी मिलते और सबकुछ होता; लेकिन मुझे लगा कि—धन-

घान तो अपने कुटुम्बियों के नाम पर सदावर्त खोलते हैं—अपने सेठ ने लड़के के नाम पर धरमशाला नहीं बनवाई?—जब वे लोग इतना-इतना करते हैं, तब मुझे तो सिर्फ जीभ ही हिलानी थी। हम यही मान लेंगे कि अपनी बिटिया के नाम पर एक गरीब लड़की को ठिकाने लगा दिया...'

घरवाली ने भी सोचा : 'भाड़ में जाने दो ! नाथी जिन्दा होती तो उसके लिये भी कपड़ों-लत्तों का खर्च तो करना ही पड़ता ! ऐसा समझेंगे कि जीती है !'

घरवाली को चुप देखकर मनोरदा बोले : 'ऐसा पुण्य तो काशीजी की जात्रा करने पर भी नहीं मिलेगा, कल्लू की माँ !'

'सच्ची बात है !' घरवाली ने सिर हिलाकर कहा।

मनोरदा फिर बोले : 'जिनके बिटिया नहीं होती वे बिटिया के लिये भूरते हैं ! अपने को भी भगवान ने दी थी, लेकिन उसकी मर्जी हुई और वापिस ले ली ! मुझे तो ऐसा लगता है कि उसीने फिर से दी है। कई लोग धरम की बिटिया...'

'बना ही लेते हैं !' कहकर कुछ मनोरदा की ओर सरककर बोली : 'जब तुम भगवान की बात करते हो तो मैं भी कहती हूँ कि उसदिन जब तुमने एक जोड़ी कपड़े माँगे, तब मन में विचार आया कि—अपने कपड़े देने के बदले 'मरने वाली' के ही दे दूँ—अब कौन पहिनने वाला है ! ऐसा सोचकर पेटी खोल तो ली, लेकिन कपड़े निकालते समय मेरे हाथ काँपने लगे ! मैंने बहुत-कुछ दबाने की कोशिश की, फिर भी काँपकपी आती रही !' फिर इस-तरह बोली मानो स्वगत बोलती हो : 'क्या यह माताजी की महिमा नहीं है ?'

'हाँ हाँ, उन्हीं की !' कहकर मनोरदा ने हुक्का हाथ में ले लिया और बोले : 'यही कह न, कि भगवान ने इज्जत बचा ली और सब अच्छा हो गया।' फिर चिलम की राख गिराते हुए कहा :

‘ला ला, थोड़ी तमाखू दे ! तेरे डर के मारे तो दो दिन से जी भर-कर तमाखू भी नहीं पी सका !’

‘लेकिन मुझे क्या खबर थी ?—आते ही बात तो करना चाहिए !’ कहती हुई खड़ी होगई ।

मनोरदा बोले : ‘मैंने सोचा कि सारा काम पूरा करके ही कहूँ; नहीं तो इधर तेरे साथ सिरपच्ची करना पड़ती ! मुझे क्या खबर थी तू यों सीधी तरह मान जायेगी ?’

घरवाली ने कुठिया पर से तमाखू उतारकर मनोरदा के हाथ में देते हुए कहा : ‘कहने जैसा करो को कहना भी पड़ता है, लेकिन क्या मैं ऐसे काम में भी बोलती ?’ और नीचे बैठते हुए बोली : ‘ऐसी खबर होती तो भूमकू के कपड़े मुलुआ के घर में होकर किस-लिये पहिनाना पड़ते ? क्या अपना घर नहीं था ? तुम्हें इतना भी नहीं सूझा !’

‘लेकिन अब कहाँ समय निकल गया ? अच्छा दिन देखकर भूमकू का न्योता कर ले; और विदा करने की ललक हो तो भी मैं कहाँ मना करता हूँ ? बुरा काम दो बार मत करो, लेकिन अच्छा काम द्वाँसबार करो न, उसमें कौन रोकने वाला है ?’ कहकर मनोरदा शांति से हुक्का गुड़गुड़ाने लगे ।

कुछ देर तक विचार करने के बाद घरवाली ने कहा : ‘तुम कहते हो तो नाथी का वह कीमखाव और एक जोड़ रेशमी कपड़े हैं वे...उसके नाम के और कौन पहिनेगा...’

‘कौन क्या, भूमकू !’ और फिर हँसते-हँसते बोले : ‘अरी पगली ! इसमें मुझ से क्या पूछना है ?’ कहकर खड़े होगये । ‘चल उठ, खटिया बिछा दे !’ कहते हुए बाहर निकले । ‘और तुझे कहाँ खबर है, भूमकू तो अपने भतीजे—कलुआ के छोरे—को एक अच्छा खिलौना लाई है; तू तो देखकर खुश होजायेगी !’ फिर पीठ फेरकर कहा : ‘कल देखना तो सही !’

‘जरूर लाई होगी; फुआ नहीं लायेगी तो दूसरा कौन लानेवाला था ?’ कहकर घरवाली भी अपने काम में लग गई। काम निपटाकर जब बाहर निकली उस समय मनोरदा के नकुण खरटा मचा रहे थे। अन्दर जाते-जाते बड़बड़ाई : ‘मैंने ही तो जबरदस्ती अमदाबाद भेजा था। कौन जाने कैसी-कैसी मुसीबतें आई होंगी ! इतने दिनों के बाद आज आराम से सो पाए हैं !’ और खटिया के नीचे पानी का लोटा रखकर, रजाई बराबर करके सोने के लिये चली गई।

रात को स्वप्न में भी नाथी और भूमकू कभी साथ-साथ कंडे बीनती हुई, तो कभी कुएँ पर पानी भरती हुई दिखाई देने लगीं। नींद पूरी होने पर करवट बदली, लेकिन उसके बाद के स्वप्न में भी भूमकू के भविष्य का कार्यक्रम चल रहा था। भूमकू को अच्छी-तरह खिला-पिलाकर कपड़े दिये—सुनहरे बूटोंवाला किमज़ाब, गुलाबी रेशमी साड़ी और असली ज़री का पोलका—नाथी के जितने भी कपड़े थे वे सब भूमकू को पहिनाकर उसकी विदा की। लोग पूछ रहे थे : ‘आज फिर क्या है ?’ और उसने जवाब दिया : ‘उस दिन तो उतावल में जैसा-तैसा कर दिया था; लेकिन सच्ची विदा तो आज ही है। अब तो हमें ही उसके सारे औसर-काज करना है !’ और इसी आनन्द की उलझन में आँख खुल गई।

स्वप्न याद करते-करते खुश होकर बोली : ‘विदा तो अब करना है !’

बाहर निकलकर देखा तो उजाला हो गया था ! पूरब में उषा की ओढ़नी का गहरा रंग हलके गुलाबी रंग में बदल रहा था। रोज़ बड़े तड़के उठकर हुक्का गुड़गुड़ाने वाले पति को अभीतक खरटा भरता देखकर बड़बड़ाई : ‘अभी तो सो रहे हैं !’ पीठ फेर ही रही थी कि सामने से भूमकू जैसा कोई आता दिखलाई दिया। पास आ जाने पर पूछा : ‘इतने सवेरे क्यों आना पड़ा बिटिया ?’

‘मेरी सास ने कहा है कि मनोर काका पाहुनों के साथ चाय पीने

के लिये आवें।' और मनोरदा को सोता देखकर : 'तुम कह देना काकी !' कहकर लौटने लगी। आवाज़ सुनकर मनोरदा जाग उठे। भूमकू को बुलाया, लेकिन वह गलियारा पार कर गई थी।

घरवाली मनोरदा की ओर देखकर हँसी और पीठ फेरकर बोली : 'बिल्कुल पगली है !'

घरवाली के इस लाड़भरे वाक्य से मनोरदा को कितना आनन्द हुआ था यह तो मुँह के भावों की अपेक्षा हृदय देखकर ही पूरी-तरह समझा जा सकता था। वे मन ही मन प्रसन्न हो रहे थे।

और गृहकार्य करते समय घरवाली भी मन ही मन सीधे-सामान तथा दहेज का विचार कर रही थी।

×

×

×

तीसरे ही दिन भूमकू को खिला-पिलाकर, नौ कपड़े पहनाकर ससुराल भेजने लगी। लोग तरह-तरह के सवाल पूछ रहे थे, जिनका मनोरदा की घरवाली एक ही जवाब देती थी : 'उस दिन तो जल्दी-जल्दी में दस्तूर कर दिया था; बाकी जो कुछ करना था वह आज कर रहे हैं।' और मानो अनकहे फिर भी मुँह पर झलकते हुए— 'यह सब तो बेचरिया को करना चाहिये तुम्हें इससे क्या मतलब ?' इस सवाल का जवाब दे रही हो इसतरह बोली : 'अब तो भूमकू के सारे औसर-काज हमें ही करना हैं, बे'न !' भराए हुए स्वर में मुश्किल से बात पूरी की : 'उसका भाई तो उससे पोलता भी नहीं !' और सिसकती हुई भूमकू को इस वाक्य ने टेर देकर रुला दिया। लोगों की आँखें भी भीग गईं। चबूतरे पर बैठकर हुक्का पीते हुए मनोरदा की आँखें भी डबाडबा आईं।

एक औरत ने भूमकू को चुपाने की कोशिश की : 'ले चुप हो जा, बिटिया ! वह न बोले तो भी भाई थोड़े ही मिट जायेगा ? कल ही बे'न बे'न करता आयेगा।'।

रूमकू के रोने की प्रतिध्वनि गलियारे के छोरवाले घर के आँगन में बारी की ओट में खड़ी हुई एक औरत के हृदय में गूँज रही थी। वह आँखें पोंछती हुई घर में चली गई।

जो शब्द मनोरदा के भराए हुए गले से बाहर नहीं निकल पा रहे थे वे ही उनकी घरवाली ने रूमकू को कुछ देर तक अपनी छाती से चिपकाये रखकर गला साफ करते हुए कहे : 'चुप हो जा बेटिया, चुप हो जा ! जब तक हम जीते हैं तबतक तुझे किस बात की फिकर है !'

एक ओर स्त्रियों से भरे हुए आँगन में आँसू बहाती हुई रूमकू ससुराल को विदा हो रही थी, और दूसरी ओर अभी-अभी आ खड़े हुए दो-चार पुरुषों के बीच मनोरदा की आँखें भी शांति से आँसुओं की धारा बहा रही थीं !



